दलित मुक्ति की विरासत

संत रविदास

डॉ. सुभाष चन्द्र

दलित मुक्ति की विरासत

संत रविदास

दलित मुक्ति की विरासत

संत रविदास

डॉ. सुभाष चन्द्र

आधार प्रकाशन

पंचकूला (हरियाणा)

हरियाणा साहित्य अकादमी के श्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार से पुरस्कृत कृति

ISBN : 978-81-7675-350-0

मूल्य	-	80 रुपये
सर्वाधिकार	-	लेखक
प्रथम पेपरबैक संस्करण	-	2012
प्रकाशक	-	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134 113 (हरियाणा) फोन - 0172-2566952, 2520244 ई-मेल - aadhar_prakashan@yahoo.com
आवरण सज्जा	-	प्रियंका
लेज़र टाइपसेटिंग	-	आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला (हरियाणा)
मुद्रक	-	बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

Dalit Mukti Ki Virasat : Sant Ravidas
by Dr. Subhash Chander

Price : Rs 80/-

श्रीमती सरोज व श्री सतप्रकाश सैनी के लिए
जिन्होंने मां-बाप की तरह स्नेह दिया

अनुक्रम

भूमिका

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में नई तकनीकों के आगमन के कारण सामंती संबंधों में दरार पड़ने और नगरीकरण की प्रक्रिया के तीव्र होने से भक्ति-आंदोलन का उद्‌भव हुआ है। इस आंदोलन का नेतृत्व निम्न वर्गों से आए संतों और कवियों ने किया। भारतीय दर्शन की श्रमण परम्परा से अपने को संबद्ध करने वाला यह आंदोलन विस्तृत क्षेत्र में फैला। कबीर, रविदास, नानक, दादू, दरिया, धन्ना, रज्जब, पलटू, नामदेव आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। सांस्कृतिक सम्मिश्रण से उपजे भक्ति-आंदोलन में निम्न वर्गों से ताल्लुक रखने वाले संतों ने जन-आकांक्षाओं व पीड़ाओं को अपनी वाणी में विशेष स्थान दिया।

संत रविदास का भारतीय इतिहास व साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने शोषित-पीड़ित-वंचित-दलित जनता की आकांक्षाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया, जो इस जनता को प्रभावित करती रही हैं। संत रविदास व उनके समकालीनों ने अपने समय के मुख्य अन्तर्विरोधों को व्यक्त किया।

सामाजिक न्याय, सामाजिक बराबरी, साम्प्रदायिक सद्‌भाव संत रविदास की वाणी का मूल स्वर है। धार्मिक संकीर्णता व संस्थागत धर्म की आलोचना करते हुए उन्होंने धर्म के मानवीय पहलू को उभारा। लोक भाषा को अपनाते हुए सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती दी। साहित्य को जनता की दुख-तकलीफों व संघर्षों से जोड़ा। उनके ये मूल्य आज भी हमारे लिए प्रासंगिक हैं। दूसरी ओर निहित स्वार्थों के चलते उनके साहित्य को विकृत किया जा रहा है। संत रविदास को जाति विशेष तक सीमित करने के प्रयास हो रहे हैं।

भक्तिकालीन संतों ने शास्त्रों-धर्मग्रंथों की दैवी सत्ता को मानने से इनकार किया था। परम्परा के मूल्यांकन में उन्होंने मानवीय व्याख्याएं प्रतिपादित कीं और जहां ऐसा नहीं था वहां परम्परागत विचारधारा व उसके समर्थक-संवाहक ग्रंथों-शास्त्रों को सिरे से ही नकार दिया और इसके बरक्स उन्होंने अपने अनुभूत ज्ञान को स्थापित किया। तत्कालीन शासक वर्ग वेद शास्त्र का नाम लेकर जनता में ऊंच-नीच को व अंधविश्वास को बढ़ावा देता था। तत्कालीन परम्परावादी पुजारी-मुल्ला जुल्म व शोषण को शास्त्रों की विकृत व्याख्या करके वैधता प्रदान करते थे। वेद-

शास्त्रों व अन्य 'धर्मग्रन्थों' में लिखी बात उनके लिए तर्क्य नहीं, बल्कि बिना किसी किन्तु-परन्तु के स्वीकार्य व अनुपालनीय थी। इसे ईश्वर का मानव के लिए संदेश कहकर नैतिक बोध में शामिल करते थे।

संतों ने शास्त्र प्रदत्त सामाजिक श्रेष्ठता को चुनौती दी। अंध-आस्था को छोड़कर अनुभव को अपने तर्क का आधार बनाया। लोक-प्रचलित तथा शास्त्र-लिखित सुक्तियों-उक्तियों, विचारों को तर्क के बिना मानने से इनकार कर दिया। इनके लिए सत्य की कसौटी शास्त्र-लिखित वाक्य नहीं, बल्कि मानव-अनुभूत तर्क था। मानव हित का तर्क इनके जीवन-बोध में गहरे तक समाया था। मानव की महत्ता स्थापित करने का तर्क ही सबसे तेज औज़ार बना। संतों ने शास्त्र-सम्मत ऊंच-नीच व भेदभाव को इसी तर्क से काट दिया था।

भारतीय दर्शन व ज्ञान-मीमांसा में भौतिकवादी व अध्यात्मवादी धाराएं समानान्तर रूप से चलती रही हैं। शासक वर्गों को हमेशा ही अध्यात्मिक धारा रास आती रही है। क्योंकि यह धारा शासकों के शोषण पर पर्दा डालती रही है उसकी दमनमूलक प्रतिमानों व आभिजात्य संस्कृति को समाज में स्वीकार्यता दिलाती रही है। शासक वर्गों ने आम नागरिकों को सदा निर्णायक मसलों से दूर रखा है दर्शन की इस धारा में इंसान की महत्ता को कमतर करके देखा गया। परमात्मा की पूजा-सेवा-भजन करने को मनुष्य का सर्वाधिक परम कार्य माना। भक्तिकालीन कवियों ने मानव को सृजक की पहचान दी। इन्होंने मानव-सेवा को ही ईश्वर-सेवा और मानव-प्रेम को ही ईश्वर-प्रेम कहा।

धर्म की मानवीय शिक्षाओं पर जोर दिया और उसके कर्मकाण्डी आडम्बरों को नकारा। धर्म का बाहरी रूप शासकों के हित में था। धर्म के इस रूप की कठिन उपासना-पद्धतियों की क्रियाओं को संपन्न करना अधिकांश आबादी से बाहर था। अधिकांश आबादी की इस तक पहुंच के लिए 'सहजता' को अपनाने पर बल दिया गया।

संत रविदास की साधना-पद्धति व उनके आध्यात्मिक चिंतन से इतर सामाजिक चिंतन वर्तमान में दलित साहित्य, चिंतन व आंदोलन को दिशा देने में अहम भूमिका निभा सकता है। इस पुस्तक में इसी को समझने का प्रयास किया गया है। आशा है कि यह प्रयास पसन्द किया जाएगा।

मैं प्रख्यात चिंतक आदरणीय डॉ. सेवा सिंह व डॉ. शिवकुमार मिश्र जी का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़कर उत्साह प्रदान किया और प्रकाशन के लिए प्रेरित किया। बेटी किरती, बेटे असीम व जीवनसंगिनी विपुला के धन्यवाद के लिए शब्द नहीं सूझ रहे।

डॉ. सुभाष चन्द्र

संत रविदास : जीवन परिचय

मध्यकालीन संतों ने अपने बारे में बहुत कम लिखा है। प्रामाणिक जानकारियों के अभाव में संतों और भक्तों के जन्म-मृत्यु व पारिवारिक जीवन के बारे में आमतौर पर मत विभिन्नताएं हैं। ''किसी महापुरुष के जीवन-वृत्त के संबंध में खोज करने के लिए हमारे पास दो ही प्रमुख साधन हैं। प्रथमतः- अन्तः साक्ष्य और द्वितीय बाह्य साक्ष्य। अंत:साक्ष्य के अन्तर्गत वह समस्त सामग्री आती है जिसमें उस महापुरुष, लेखक अथवा कवि ने स्वयं अपने संबंध में परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में बताया हो। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत उसके संबंध में उसके सम-सामयिक तथा परवर्ती विद्वानों द्वारा लिखी गई सामग्री आती है। प्रचलित कथाएं व किंवदंतियां आदि की भी गणना बाह्य साक्ष्य में होती है। बाह्य साक्ष्य की अपेक्षा अंत:साक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण होता है। बाह्य साक्ष्य में समकालीन विद्वानों का कथन अधिक प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। संत रविदास के संबंध में हमें अधिकतर बाह्य-साक्षियां ही मिलती हैं। अंत:साक्ष्य सामग्री से केवल नाम, जाति, गार्हिस्थ्य जीवन और विचारधारा आदि कुछ तथ्यों पर ही प्रकाश पड़ता है।''[1]

संत रविदास की कृतियों में उनके अनेक नाम देखने को मिलते हैं। उच्चारण की दृष्टि से थोड़े-बहुत अन्तर से देश के विभिन्न भागों में रैदास, रोहीदास, रायदास, रुईदास आदि अनेक नाम प्रचलित हैं। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संत रविदास के कुछ पद संकलित हैं, जिनमें उनके रैदास नाम का उल्लेख है। लोक-प्रचलन और सुविधा की दृष्टि से उनका मूल नाम रैदास ही स्वीकार किया जाता है। काव्य-ग्रन्थों में रैदास का तत्सम रूप रविदास प्रयुक्त हुआ है। अन्य नाम देश और काल के भेद से उन्हीं के परिवर्तित और विकसित रूप माने जा सकते हैं।[2]

संत रविदास के नाम के बारे में ही नहीं, बल्कि जन्म के बारे में भी कई अटकलें लगाई जाती हैं। ''रविदासी सम्प्रदाय में निम्नलिखित दोहा शताब्दियों से प्रचलित है :

चौदह से तैंतीस की माघ सुदी पंदरास।
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे स्त्री रविदास॥[3]

संत रविदास का जन्म बनारस छावनी के पश्चिम की ओर दो मील दूरी पर स्थित मांडूर गांव में हुआ, जिसका पुराना नाम मंडुवाडीह है। 'रैदास रामायण के अनुसार

काशी ढिग मांडूर स्थाना, शूद्र वरण करत गुजराना।
मांडूर नगर लीन अवतारा, रविदास शुभ नाम हमारा॥[4]

रविदास के पिता का नाम राघव अथवा रघू तथा उनकी माता का नाम करमा देवी तथा पत्नी का नाम लोना था।[5]

''रैदास के गुरु के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। कुछ विद्वान उनको भी कबीर के समान रामानन्द जी का शिष्य मानते हैं। किंतु उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वे रामानन्द की शिष्य परम्परा में गिने जाते हैं क्योंकि वे भक्तों में जात-पांत का भेदभाव करने के विरोधी थे।''[6]

उन्होंने अपनी वाणी में रामानन्द का न तो जिक्र किया और न ही कोई ऐसा संकेत दिया है कि वे उनके गुरु है।

रविदास ने अपनी वाणी में अपने पेशे व जाति के बारे में बार-बार लिखा है। वे मृत पशु ढोने का कार्य करते थे।

मेरी जाति कुट बाढ़ला ढोर ढुवंता,
नितहि बंनारसी आसपासा।।

***

जाति ओछी पाती ओछी, ओछा जनम हमारा।

***

कहि 'रविदास' खलास चमारा।
जो हम सहरी सो मीत हमारा॥

''मध्यकालीन भारतीय समाज की रचना का एक सबल आधार वर्ण-व्यवस्था थी। इस वर्ण-व्यवस्था के पीछे कर्म के आधार पर समाज-संगठन का सिद्धांत विद्यमान था। अतएव व्यवसायों पर वर्णों या जातियों को जो एकाधिकार था, वह आनुवंशिक रूप में उत्तराधिकार भी बन जाता था। अस्तु, रैदास ने भी पैतृक व्यवसाय का उत्तराधिकार प्राप्त किया और अपनी किशोर वय में ही चर्म का व्यवसाय करने लगे। रैदास के पदों में इस व्यवसाय की साक्षी प्रचुर है- 'चमरटा गांठ न जनई, लोक गठावें पनहीं' (पद 31) इस उद्धरण से ज्ञात होता है

कि रैदास इस चर्म-कर्म में भी निपुण न थे। संभवतः उनको अपनी रुचि के विरुद्ध उनके पिता ने इस कर्म में लगा दिया होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रैदास की प्रतिकूल रुचि और विरक्ति को देखकर उनके पिता ने बाद में उन्हें इस धंधे से अलग कर दिया। अब वे अपने पैतृक मकान के पीछे झोंपड़ी में ही निवास करने लगे।

अनंतदास लिखते हैं :-

बड़ो भयौ तब न्यारौ कीनौ, बांटे आवे सो बांटि न दीनों।
राध्या बावरी के पिछवारे, कछु न कहयौ रैदास विचारे।
सीधो चाम मोलि लै आवै, ताकी पनही अधिक बनावे।
टूटे फाटे जरवा जोरे मसकत करि काहु न निहारै।''[7]

संत रविदास ने कुछ पदों में ''उन दुखों का भी चित्र किया है, जो उन्हें अक्सर चमार होने के कारण सहन करने पड़ते थे। यथा-

हम अपराधी नीच घर जनमें।
कुटुम्ब लोक करे हांसी रे॥
जहां जाऊं तहां दुख की रासी।
जो न पतियाइ साधु हैं साखी॥
दारिद देखि सब कोई हांसे ऐसी दशा हमारी।
अष्टादस सिद्धि कर तले सब किरपा तुम्हारी॥

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि रैदास जी दरिद्र थे और उनकी दरिद्रता पर भी हंसते थे।''[8]

रविदास-सम्प्रदाय के पक्षधर मानते हैं कि रविदास का निर्वाण चैत्र मास की चतुर्दशी को हुआ था। कुछ विद्वानों का विचार है कि उनकी मृत्यु सं. 1597 में हुई थी। यह तिथि 'भगवान रैदास की सत्यकथा' ग्रंथ में दी गई है। 'मीरा स्मृति ग्रंथ' में रैदास का निर्वाण-काल सं. 1576 दिया गया है। यह भी विश्वास किया जाता है कि उन्हें 130 वर्ष की दीर्घायु मिली थी।

अनन्तदास ने लिखा :-

पन्द्रह सौ चउ असी, भई चितौर महं भीर।
जर-जर देह कंचन भई, रवि-रवि मिल्यौ सरीर॥

इससे स्पष्ट है कि संवत 1584 में रैदास ने चितौड़ में देह-त्याग किया था। आधुनिक शोध पर आधारित यह मत अधिक विश्वसनीय लगता है।''[9]

रचनाएं

''संत रविदास ने कितनी रचनाएं की हैं, उनके कितने ग्रंथ हैं, यह ठीक से ज्ञात नहीं है। कबीर की भांति वे भी पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने अपनी रचनाएं स्वयं लिपिबद्ध नहीं की। अधिकांशतः वे मौखिक रूप में ही प्रचलित रहीं। बाद में उनके पंथ के लोगों ने उनकी रचनाओं को लिपिबद्ध किया है। स्वयं रविदास द्वारा लिखित एक ही हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्य नहीं है और न कोई ऐसा प्रामाणिक उल्लेख ही मिलता है जिसमें उनके द्वारा रचित पदों, साखियों एवं ग्रंथों की संख्या का उल्लेख हो।

संत रविदास की रचनाओं की जो प्रतिलिपियां प्राप्य हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। प्रतिलिपियों में अनेक अशुद्धियां और पाठांतर हैं।''[10] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में संग्रहित विभिन्न गुटकों में, 'दादूपंथ' के धर्म-ग्रन्थ 'सर्वांगी' और 'पंचवानी' में, 'गुरु-ग्रन्थ-साहब' में भी संत रविदास के पद व साखियां संग्रहित हैं।

जनश्रुतियां एवं किंवदंतियां

भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के महापुरुषों के जीवन से संबंधित चमत्कारिक घटनाएं समाज में प्रचलित हैं। जनश्रुतियों एवं किंवदंतियों के माध्यम से लोग अपने आदर्श पुरुष, महापुरुष एवं नायक के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं या अप्रिय के प्रति घृणा अथवा निन्दा व्यक्त करते हैं। अपने नायक को किसी दूसरे नायक से अव्वल सिद्ध करने के लिए भी किंवदंतियों का निर्माण किया जाता है। इसीलिए महापुरुषों की विराटता को प्रदर्शित करने वाली जनश्रुतियों की प्रकृति भी एक जैसी हो जाती है। बहादुरी, त्याग, दयाशीलता, न्यायप्रियता, परोपकार आदि गुणों व अपने अनुयायियों की रक्षा व उत्थान करने वाले कार्य लगभग प्रत्येक महापुरुष से जुड़े हैं। किंवदंतियों की रचना व प्रसार निरुददेश्य नहीं होता, बल्कि किसी विचार, मान्यता या मूल्य को लोगों में स्थापित करने के लिए होता है। किंवदंतियां चुपचाप अपना प्रभाव छोड़ती रहती हैं और एक समय के बाद सामान्य चेतना (कामन सेंस) का अविभाज्य हिस्सा बनकर समाज की चेतना को स्वतः ही प्रभावित करती रहती हैं।

किंवदंतियों-जनश्रुतियों की प्रकृति बहुत ही लचीली होती है। वर्गों में विभक्त समाज में ये वर्चस्वी वर्ग के संस्कारों-विचारों के संवाहक का काम करने लगती हैं। इसलिए वर्गीय जरूरतों के साथ-साथ ये किंवदंतियां भी बदलती रहती हैं, इनमें जोड़-घटाव होता रहता है। कई बार तो किसी व्यक्ति के बारे में ऐसी

किंवदंतियां प्रचलित हो जाती हैं, जिससे उस व्यक्ति का मूलभूत विरोध रहा है। वर्चस्वी वर्ग अपने प्रभुत्त्व को बनाए रखने के लिए अपने विरोधी विचारकों के विचारों को भी तोड़-मोड़कर इस तरह प्रस्तुत करता है कि वे उसी वर्ग का हित साधना शुरू कर देते हैं। मध्यकालीन संतों के साथ भी कुछ इसी तरह का हुआ। कबीर हों या रविदास कोई भी इससे नहीं बच पाया।

संत रविदास के बारे में ऐसी जनश्रुतियां हैं कि यदि रविदास को वे सुना दी जातीं तो वे अपना सिर धुन लेते। गौर करने की बात है कि यह सब उनके पक्के अनुयायी, भक्त, श्रद्धालु या सिद्धांतकारों द्वारा प्रचारित-प्रसारित की जाती रही हैं या अनुमोदित की गयीं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भारतीय समाज मुख्यतः ब्राह्मणवादी विचारधारा से परिचालित रहा है। समाज के हर वर्ग ने इस विचारधारा की नैतिकता व आचार-संहिता का ही मूलतः पालन किया है। इसकी समाज पर इतनी पकड़ रही है कि जो भी विचार इसके विपरीत खड़ा हुआ और समाज में बड़ी तेजी से उसे मान्यता मिली वह भी अन्ततः ब्राह्मणवाद का हिस्सा बन गया और इसी विचार को मजबूती प्रदान करने लगा। महात्मा बुद्ध का उदाहरण अधिक महत्त्वपूर्ण है। महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मणवाद की चूलें हिला दी थीं। ईश्वर के अस्तित्व तक से इनकार कर दिया था। कर्म को महत्त्व देकर नियतिवाद को मानने से इनकार किया था, लेकिन आखिरकार बुद्ध का दर्शन ब्राह्मणवाद के साथ इस तरह घी-शक्कर हो गया कि वह उसके सबसे अधिक काम आया। कर्म का सिद्धांत पुनर्जन्म और मुक्ति के साथ जुड़ गया और इसने दलित-पीड़ित-वंचितों को कई हजार वर्षों तक गुलाम बनाए रखने का इंतजाम पक्का कर दिया। गौर करने की बात तो यह है कि यह सब इसलिए नहीं हुआ कि बुद्ध के बाद उसके अनुयायियों में कोई उन जितना बुद्धिमान व ज्ञानी नहीं हुआ, बल्कि बहुत अधिक प्रखर समझ वाले लोग हुए, जिन्होंने इस दर्शन में कुछ मौलिक भी जोड़ा। ब्राह्मणवाद ने बुद्ध की गिनती बारह अवतारों में कर दी। इस तरह का सम्मानित स्थान देकर उसके अनुयायियों को अपने घेरे में लिया तो उसके अनुयायियों में बुद्ध के साथ अन्य अवतार भी स्वीकृति पा गए। बुद्ध की विचारधारा वही कार्य करने लगी जिसके खिलाफ वे खड़े हुए थे। समाज के वर्चस्वी वर्गों की यथास्थितिवादी विचारधारा परिवर्तनकामी विचारधाराओं को अपने में इस तरह समाहित कर लेती है कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व लगभग मिट ही जाता है।

ब्राह्मणवाद ने महात्मा बुद्ध के प्रभाव को समाप्त करने के लिए कई ग्रंथों की रचना करवाई थी। रविदास, कबीर आदि के प्रभाव को समाप्त करने के लिए भी कई ग्रंथों की रचना की गई, जिनमें संतों के बारे में कई तरह की कहानियां व

चमत्कार ठूंस दिए गए और कालान्तर में वही आम लोगों में इन संतों का परिचय करवाने लगे। विशेषतौर पर नाभादास कृत 'भक्तमाल' का जिक्र किया जा सकता है। जो महात्मा बुद्ध के साथ हुआ संत कबीर और रविदास का भी वही हश्र हुआ। ये ब्राह्मणवाद के खिलाफ खड़े हुए थे, ब्राह्मणवादी दर्शन, नैतिकता व अन्य तौर-तरीकों का विरोध किया था, लेकिन कबीर व रविदास के आधिकारिक चेलों ने उन्हें ब्राह्मणवाद में ही दीक्षित कर दिया। इनके बारे में जो किंवदंतियां प्रचलित हैं, उनमें मौजूद ब्राह्मणवादी तत्त्वों से ही इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

रविदास के बारे में तो प्रकारान्तर से यह भी दावा किया गया कि वह पिछले जन्म के ब्राह्मण हैं। शायद इसके पीछे ब्राह्मणवादी शक्तियों की यह भी मान्यता रही हो कि ऐसा ज़हीन व ज्ञानी आखिर दलितों-शूद्रों में कैसे पैदा हो सकता है? ब्राह्मणवाद ने द्विजों को ज्ञान का जो विशेषाधिकार दिया उसका आधार जन्म ही था जो यह भी साथ ही कहता था कि गैर-द्विजों में कोई ज्ञानी पैदा नहीं हो सकता। इस विचार की समाज में स्वीकृति बनाए रखने के लिए यह जरूरी था कि वे समस्त ज्ञानियों को किसी न किसी प्रकार से द्विज घोषित करते, क्योंकि रविदास व कबीर जैसे 'नीचों' 'मलेच्छों' को भी यदि ज्ञान हो सकता है तो फिर ब्राह्मणवादियों ने जो सिद्धांत इतनी 'मेहनत' करके बनाए उनकी वैधता पर ही प्रश्नचिह्न लग सकता है। इसलिए रविदास को जन्म से ब्राह्मण घोषित करना असल में उसके ज्ञान व महत्त्व का स्वीकार नहीं बल्कि नकार है, क्योंकि जो कुछ रविदास ने संघर्ष के साथ अर्जित किया उसका श्रेय उसके ब्राह्मण होने को दे दिया। यह जनश्रुति इस प्रकार है कि रविदास "पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी थे और शापवश उन्हें चर्मकार परिवार में जन्म लेना पड़ा था। बालक रविदास ने पूर्व-जन्म का ज्ञान होने के कारण अपनी माता का स्तनपान करना पसंद नहीं किया। घर के लोग चिंतित और परेशान हुए तो किंवदंती के अनुसार रामानन्द ने आकर बालक को उपदेश दिया और अपनी माता के स्तन-पान की आज्ञा प्रदान की। तब कहीं बालक ने मां का दूध पीना प्रारंभ किया।"[12] कहानी बिल्कुल अजीब है कि एक ब्राह्मण ने दूसरे ब्राह्मण को शूद्र के घर में पैदा होने का अभिशाप दिया और उसी का नतीजा है रविदास। फिर बात यहीं नहीं रुकी, बल्कि आगे बढ़ाई कि रविदास को पिछले जन्म का ज्ञान याद रहा और उसने बचपन में ही मां का दूध पीने से इनकार कर दिया, गुरु से आज्ञा लेकर ही दूध पिया। इससे यह भी कहा जा रहा है कि रविदास ने अपने मां-बाप को भी उतना महत्त्व नहीं दिया जितना कि 'ब्राह्मण गुरु' को दिया। रविदास ने शूद्र के घर में जन्म तो लिया अभिशाप के कारण, लेकिन

उन्होंने शूद्र को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस तरह रविदास को सीधे-सीधे ब्राह्मण घोषित करने वाली कहानी गढ़ी गयी। जबकि रविदास ने अपनी वाणी में अपनी जाति व वर्ण के बारे में कई कई बार स्पष्ट तौर पर लिखा है :

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारं
हृदय राम गोबिन्द गुन सारं

रविदास की वाणी के अंत:साक्ष्यों पर ही विश्वास करना ज्यादा उपयुक्त है, क्योंकि जब पिछले जन्म का ब्राह्मण भी अपनी मां जो शुद्र है उसका दूध पीने से इनकार करता है तो फिर इस जन्म का ब्राह्मण शूद्र के घर उपदेश देने कैसे पहुंचने के लिए तैयार हो गया। जब पिछले जन्म में शूद्र के घर से लाई भिक्षा के कारण वे अपने शिष्य को शूद्र होने का उपदेश दे सकता है तो इस जन्म में शूद्र के पास जाने का तो कोई कारण ही नजर नहीं आता। असल में यह कहानी रविदास की महानता का कारण उसका किसी न किसी तरह से ब्राह्मण से सम्पर्क होना सिद्ध करती है।

रविदास और कबीर दोनों एक ही परम्परा के संवाहक हैं और दोनों एक ही शहर व समाज में चेतना का प्रसार कर रहे थे। कबीर के बारे में भी इस तरह की अनर्गल बातें जोड़ दी गई हैं। "किंवदंती के अनुसार कबीर एक बाल विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, जिसने उन्हें लोक लाज के कारण तालाब में बहा दिया था। किंतु यह धारणा मिथ्या और मनगढंत मालूम पड़ती है। यही नहीं इसको सिद्ध करने के लिए कबीर वाणी में यह पद भी जोड़ दिया गया:

पूरब जनम हम बाह्मन होते, औछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूकी, पकरि जुलाहा कीनां॥

अर्थात पूर्वजन्म में हम ब्राह्मण थे, किंतु नीच कार्य करने, जप, तप, व्रत आदि न करने तथा भगवान राम की सेवा करने के अभाव के कारण जुलाहे के वंश में उत्पन्न किए गए। विद्वानों ने इस पद को प्रक्षिप्त घोषित किया है। कबीर को अपने को बार जुलाहा कहते हैं और संत बनने के बाद भी कपड़े बुनने का काम करते हैं, जिसका उल्लेख उनकी वाणियों में हैं।"[13]

रविदास के साथ कई कहानियां इस तरह की प्रचारित हैं कि वे परम संतोषी थे, धन को छूते भी नहीं थे। सारा दिन अपना काम करते रहते थे और ब्राह्मण को एक जोड़ा जूतियों का हर रोज दान करते थे। ये कहानियां उनके संतोषी स्वभाव उजागर करती हैं, लेकिन सवाल यह है कि क्या ये उनके प्रति श्रद्धा भाव के कारण जोड़ी गई हैं या इसके पीछे कोई अन्य मंतव्य भी हो सकता है। यदि श्रद्धा भाव से भी ऐसी कहानियां निर्मित की हैं तो उनका भी एक कारण जो ब्राह्मणवाद के लिए

अनिवार्य है। ब्राह्मणवाद की विचारधारा का निमार्ण इसलिए ही तो किया गया है कि वह शोषण को इस तरह वैधता प्रदान करे कि शोषण करने वाले के सामने कोई नैतिक संकट न खड़ा हो। शोषण वह सिर ऊंचा करके कर सके और दूसरी तरफ जिसका शोषण हो रहा है उसे वह शोषण नहीं, बिल्कुल सहज स्वाभाविक सी बात लगे। तभी शोषण का यह कारोबार इतना बेधड़क होकर चल सकता है, और चल रहा है। इस मकसद को पूरा करने के लिए शोषित समाज के नायकों के साथ इस तरह के किस्से जोड़ दिए कि उनके अनुयायी अनुकरण करें। यह बात सही है कि श्रम को अधिमान देने वाला व्यक्त कभी अन्य कारणों से आए धन को तो स्वीकार नहीं करेगा परन्तु रविदास ने शोषण का कभी पक्ष नहीं लिया और न ही उसे जायज ठहराया। इससे साबित करना चाहते होंगे कि शूद्रों को तो धन की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि उनको धन बनाने के साधन दे भी दिए जाएं तो वे इसका उपयोग नहीं करेंगे। जिस तरह रविदास ने पारसमणि को छुआ ही नहीं वह उसी तरह झोंपड़ी में खुंसी रही।

रविदास के बारे में यह भी प्रचलित है कि जब उन्होंने पारसमणि का कोई प्रयोग नहीं किया तो उनकी दरिद्रता दूर करने के लिए ईश्वर ने पांच सोने की मुद्राएं देनी आरम्भ कीं। वे रविदास पर इसलिए प्रसन्न हुए कि वे ''नित्यप्रति भगवान की मूर्तियों को स्नानादि कराते, चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि से उनकी सेवा करते, तत्पश्चात् अन्न-जल ग्रहण करते थे।''[14] कहानी का दूसरा हिस्सा और भी रोचक है कि रविदास हर रोज स्वर्ण मुद्राएं तो लेते रहे और इस धन से ''एक भव्य एवं विशाल मंदिर तथा एक धर्मशाला बनवाया। मंदिर और धर्मशाले के पास ही उन्होंने एक बड़ा पक्का तालाब भी बनवाया।'' अब इस कहानी में रविदास का संतोषी स्वभाव तो पीछे रह गया सामने आई उनके द्वारा साकार ईश्वर की पूजा। भक्ति के नाम पर वही बाहरी आडम्बर व पाखण्ड जिसका कि उनकी वाणी बार-बार खण्डन करती है। रविदास ब्राह्मण पुजारी की तरह ही नजर आने लगते हैं। उनका निर्गुण निराकार, सहज-भक्ति, सादगी व बाहरी आडम्बरों का विरोध धरा का धरा रह जाता है। रविदास की वाणी को देखें तो ब्राह्मणवाद की जड़ें उखड़ती हैं और यदि इन किंवदंतियों पर भरोसा करें तो रविदास की जड़ें ब्राह्मणवाद में नजर आती हैं।

माथै तिलक हाथ जप माला, जग ठगने कूं स्वांग बनाया।
मारग छांड़ि कुमारग डहकै, सांची प्रीत बिनु राम न पाया।

* * *

भगति ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगति तब गई बड़ाई॥ टेक॥
कहा भयो नाचे अरू गाये, कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौं लौं तत्व न चीन्हे।
कहा भयो जे मूंड मुंडायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
स्वामी दास भगत अरू सेवक, परम तत्व नहिं चीन्हे।
कह रैदास तेरी भगति दूरी है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभियान मेटि आपा पर, पिपिलिक ह्वै चुनि खावै॥

***

ऐसी भगति न होई रे भाई।
राम नाम बिनु जो कछु करिये, सो सब भरमु कहाई॥
भगति न रस दान, भगति न कथै ज्ञान।
भगति न बन में गुफा खुदाई॥
भगति न ऐसी हांसी, भगति न आसा-पासी।
भगति न यह सब कुल कान गंवाई॥
भगति न इंद्री बांधा भगति न जोग साधा।
भगति न अहार घटाई, ये सब करम कहाई॥
भगति न इंद्री साधे, भगति न वैराग बांधे।
भगति न ये सब वेद बड़ाई॥
भगति न मूड़ मुंडाए, भगति न माला दिखाये।
भगति न चरन धुवाए, ये सब गुनी जन कहाई॥
भगति न तौ लौं जाना, आपको आप बखाना।
जोड़इ-जोड़इ करै सो सो करम बड़ाई॥
आपो गयो तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई।
राम मिल्यो आपो गुन खोयो, रिद्धि सिद्धि सबै गंवाई॥
कह रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताही के पास।
आत्मा थिर भई सबही निधि पाई॥

''गुरु रविदास जी के जीवन से संबंधित अनेक चमत्कारिक घटनाएं जनश्रुतियों के रूप में प्रचलित हैं। भगवान का स्वयं साधु रूप में आकर इन्हें पारसमणि प्रदान करने पर अस्वीकार करना, भगवान के सिंहासन के नीचे से सोने की पांच मोहरों का नित्य प्राप्त होना, गंगा का हाथ निकालकर ब्राह्मण से रविदास की भेंट स्वीकार

करके बदले में रत्न जड़ित सोने का कंगन प्रदान करना, राजा की सभा में ब्राह्मणों का विवाद में पराजित होना, जल में शालिग्राम की मूर्ति तिराना तथा सिंहासन से मूर्ति का रविदास जी की गोद में आ बैठना, भोज में अनेक रूप धारणकर प्रत्येक ब्राह्मण के मध्य एक-एक रविदास का विराजमान होना आदि सर्वाधिक प्रचलित हैं। इन अनुश्रुतियों में गुरु रविदास जी की भक्ति, संतभाव, सिद्धत्व तथा अनुपम ख्याति की छाया स्पष्टत: प्रतिबिम्बित हुई है।''[15]

रविदास के बारे में प्रचलित जनश्रुतियों से एक बात तो अवश्य सिद्ध होती है कि उनका प्रभाव काफी बड़े क्षेत्र में और बहुत गहरा था। उनके प्रभाव को समाप्त करने के लिए ही उनके साथ इस तरह की कथाएं रची गई हैं। बार-बार उनके साथ चमत्कार जोड़ गए हैं तथा बार-बार उनको एक सनातनी पंडित की तरह पूजा करता हुआ दिखाया गया है। इस सारी कवायद में रविदास में से असली रविदास निकाल कर उसकी जगह एक मघडंत कर्मकाण्डी रविदास लोगों के दिमागों में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। यदि रविदास का ऐसा प्राकल्पित जीवन ब्राह्मणवाद को मजबूती देता है तो फिर रविदास को अवतार घोषित करने में भी कोई हर्ज नहीं। इन किंवदंतियों को इसी नजरिये से रचा गया है। और यह भी सच है कि वे अपने मकसद में कामयाब भी हुए हैं। रविदास के नाम पर 'कुण्ड-निर्माण', मंदिर-निर्माण करके उनके अनुयायी उनके संदेश को धूमिल कर रहे हैं।

रविदास की जो तस्वीर-मूर्ति लोकप्रिय है उसमें उनका रूप भी बिल्कुल उसी तरह दमक रहा है जैसे कि निकम्मे-निठल्ले कथित संन्यासियों का दिखाई देता है। असल में हर वर्ग का एक संस्कार होता है। अच्छे खाते-पीते लोगों का इष्ट भी तो अच्छा खाता-पीता ही होगा। संत रविदास के हाथ से काम करने के औजार दूर करके उनके हाथ में माला पकड़ा दी गई और इसके पीछे कौन-सी विचारधारा रही होगी, यह सोचने की फुरसत रविदास के अनुयायियों को कहां? रविदास की तरह की असुविधा कोई क्यों ले? रविदास के नाम पर एक भव्य भवन बना दिया और उनके जन्मदिन पर हलुवा-पूरी खा लेने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। इस जमाने में रविदास पर यह अहसान भी क्या कम है।

संत रविदास के संबंध में प्रचलित जनश्रुतियां-किंवदंतियां दलित समाज में खूब प्रचलित हैं, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि अधिकांश समाज अपने आदर्श महापुरुष को इन चमत्कारपूर्ण घटनाओं से ही जानता है। रविदास का कोई दोहा या पद किसी उनके अनुयायी को याद हो या न हो, लेकिन उनके जीवन से जुड़ी इन कपोल-कल्पित व मनघड़ंत किस्सों का ब्यौरेवार जरूर पता होगा। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि रविदास वाणी को इन किंवदंतियों ने इस

तरह से आच्छादित कर लिया है कि इनकी गर्द–गुबार के नीचे उनकी वाणी में व्याप्त समतावादी मानव समाज निर्माण का संदेश ढक सा गया है। गौर करने की व चिन्ता की बात यह है कि संत रविदास के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए प्रयोग की जा रही इन किंवदंतियों से उनके संदेश के विपरीत काम लिया जा रहा है। ब्राह्मणवादी विचारधारा में इतनी लोच रही है कि वर्चस्वी वर्ग के हितों की रक्षा के लिए अपने को बदलती रहती है। असल में तो ब्राह्मणवादी विचारधारा अपने विरुद्ध उठ रहे आंदोलनों, संघर्षों, विचारधाराओं को पैदा नहीं होने देना चाहती, उसके जन्म काल में ही उसे दबा देने का यत्न करती है, लेकिन यदि वह समाज में स्वीकृति पा जाए और उसका प्रभाव बढ़ने लगे तो वह उससे शत्रुता का व्यवहार त्यागकर उसे अपने में मिलाने की कोशिश करती है और स्वयं ही उसकी व्याख्याकार बन जाती है। यही विचारधारात्मक रणनीति संत रविदास जैसे संतों के साथ उसने बरती है। संत रविदास के ब्राह्मणवाद–विरोध को पीछे करके उनके ऐसे रूप को प्रतिष्ठापित करना जो स्वयं ब्राह्मणवाद के प्रवक्ता की तरह का काम करने लगे। ब्राह्मणवादी विचारधारा के सूक्ष्म तत्वों की पहचान करते हुए 'रविदास दर्शन' को उससे निजात दिलाने की जरूरत है। रविदास के विषय में प्रचलित किंवदंतियों–जनश्रुतियों के कथारस में निहित ब्राह्मणवाद को उनकी वाणी के अध्ययन, चिन्तन–मनन से दूर कर सकते हैं। रविदास के विचारों को हृदयंगम करने का सबसे विश्वसनीय साधन रविदास की वाणी ही है, उसे ही प्रतिष्ठापित करना जरूरी है।

संदर्भ

1. स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डेय; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.–49
2. धर्मपाल मैनी; रैदास; पृ.–13
3. पृथ्वी सिंह आजाद; रविदास दर्शन; पृ.–71
4. डा. सरनदास भनोत; रविदास वचन सुधा; पृ.–12
5. स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डेय; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.–73
6. सावित्री शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.–9
7. धर्मपाल मैनी; रैदास; पृ.–19
8. कंवल भारती; सन्त रैदास; एक विश्लेषण; पृ.–30
9. धर्मपाला मैनी; रैदास; पृ.–24
10. स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डेय; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.–89

11. ''नाभादा जी ने अपनी भक्तमाल में गुरु रविदास जी के विषय में जो प्रशस्ति गई है वह उनके व्यक्तित्व तथा वाणीगत विचारधारा का पूर्ण एवं सत्य-सत्य उद्घाटन करता है। वे लिखते हैं कि रविदास जी की विमल वाणी संदेह की ग्रंथि को सुलझाने में परम सहायक है। रविदास जी ने सदाचार के जिन नियमों के उपदेश दिए थे वे वेद शास्त्रादि के विरुद्ध नहीं थे। उन्हें नीर-क्षीर विवेक वाले संत महात्मा लोग भी अपनाते थे। उन्होंने भगवत्कृपा के प्रसाद से अपनी जीवितावस्था में ही परमगति प्राप्त कर ली। इनकी चरणधूलि की वंदना लोग अपने वर्णाश्रम का अभिमान त्यागकर भी किया करते थे।''

संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रविदास की।
सदाचार स्त्रुतिबचन अबिरूध उचारयो।
नीर छीर बिबरन परम हंसनि उर धरयो।
भगवत कृपा प्रसाद परमगति इहि तनु पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई।।
बर्नास्त्रम अभिमान तजि पद राज बंदहि जासकी।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रविदास की।।''

12. स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डे; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.-144
13. सावित्री चन्द्र शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.-2
14. स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डे; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.-147
15. पृथ्वी सिंह आजाद; रविदास दर्शन; पृ.-70

संत रविदास : युगीन परिवेश

साहित्यकार अपने परिवेश से ही साहित्य के लिए विषय वस्तु ग्रहण करता है। जिन रचनाओं में समसामयिक सामाजिक शक्तियों के मुख्य अन्तर्विरोध व संघर्ष परिलक्षित होते हैं, वही रचनाएं महान होती हैं। किसी रचना को समझने के लिए उसके समय को समझना बहुत आवश्यक है, जिसमें उसकी उत्पत्ति होती है, जहां से उसका रचियता रचना के लिए सामग्री जुटाता है।

संत रविदास जिस काल खंड में रचना कर रहे थे, वह साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण समय था। समाज में व्यापक स्तर पर परिवर्तन हो रहे थे, और साहित्यकार अपने समय के अन्तर्विरोधों को समझने तथा उनको व्यक्त करने के लिए जद्दोजहद कर रहे थे। यह एक आंदोलन की तरह था। जब यह आंदोलन था तो इसके कुछ संकल्प व उद्देश्य तो अवश्य ही होंगे, जो इनकी रचनाओं में कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष तौर पर नजर आते हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा में भक्ति आंदोलन के बारे में के. दामोदरन ने लिखा कि ''भक्ति आंदोलन ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न मात्राओं में तीव्रता और वेग ग्रहण किया। यह आंदोलन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। किन्तु कुछ मूलभूत सिद्धांत ऐसे थे जो समग्र रूप में पूरे आंदोलन पर लागू होते थे—पहले, धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार करना; दूसरे, ईश्वर के सामने सबकी समानता; तीसरे, जाति प्रथा का विरोध; चौथे, यह विश्वास कि मनुष्य और ईश्वर के बीचे तादात्मय प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करता है, न कि उसकी ऊंची जाति अथवा धन सम्पत्ति पर; पांचवें, इस विचार पर जोर कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है; और अन्त में, कर्मकाण्डों, मूर्ति पूजा, तीर्थाटनों और अपने को दी जाने वाली यंत्रणाओं की निन्दा। भक्ति आंदोलन मनुष्य की सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता था और सभी वर्गगत एवं जातिगत भेदभावों तथा धर्म के नाम पर किये जाने

वाले सामाजिक उत्पीड़न का विरोध करता था।''[1]

समय व क्षेत्र की दृष्टि से हिना्दी में भक्तिकाव्य से अभिहित किए जाने वाले साहित्य का फलक व्यापक है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा है। इसकी उत्पति के कारणों को तलाशने की कोशिश की है। ''किसी ने उसे मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचार की प्रतिक्रिया माना है, तो किसी ने ईसाइयत की देन, किसी को उसमें निराश और हतदर्प जाति की कुंठाग्रस्त और अन्तर्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति दिखाई दी तो किसी को वह तत्कालीन परिस्थितियों और सामाजिक असंतोष की उपज प्रतीत हुआ, किसी ने उसके मूल में यौगिक और तांत्रिक प्रवृत्तियों का प्रसार देखा और किसी ने लोकमत के शास्त्रीय आवरण की प्राप्ति।''[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस विचार को हिन्दी में काफी मान्यता मिली कि भक्ति साहित्य की उत्पत्ति का कारण मुसलमानों का हिन्दुओं पर अत्याचार था और कवियों ने भक्ति के माध्यम से हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिए भक्ति को अपनाया। यद्यपि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के मत को अपने तर्कों से तथ्यहीन साबित किया। उन्होंने कहा कि भक्ति आंदोलन की उत्पति मुसलमानों के अत्याचारों के कारण नहीं हुई, क्योंकि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ और दक्षिण में न तो मुसलमानों के आक्रमण हुए थे और न ही तब तक मुसलमान दक्षिण तक गए थे। प्रसिद्ध है कि 'द्राविड़ भक्ति उपजी, लाए रामानन्द'। तथ्य व तर्कपूर्ण न होने पर भी आचार्य शुक्ल का मत अधिकांश हिन्दी के शोधार्थियों व अध्यापकों की मानसिकता का हिस्सा बना रहा है। इस मत के अलावा उनको किसी अन्य मत को स्वीकार करने में काफी मशक्कत करनी पड़ती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत उनको सहज-स्वाभाविक सा लगता है। इसका कारण हिन्दी क्षेत्र में साम्प्रदायिक इतिहास चेतना का प्रसार है, जो समकालीन राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए इतिहास का साम्प्रदायिकरण करती रही है। अपने समय के छः-सात सौ साल के बाद भी प्रासंगिक भक्तिकाल का जीवन्त साहित्य मात्र प्रतिक्रिया में नहीं रचा जा सकता और 'पराजित व निराश मन' की उपज तो कतई नहीं हो सकता। भक्तिकाल का साहित्य किसी समुदाय-विशेष का विरोध करने के लिए नहीं पैदा हुआ, बल्कि उसके सकारात्मक उद्देश्य व संकल्प थे, कुछ आदर्श व मूल्य थे, जिनको समाज में स्थापित करना चाहते थे। यह साहित्य केवल तत्कालीन रचनाकारों के मन की उपज भी नहीं था, बल्कि यह ठोस सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में उत्पन्न हुआ था और इसकी जड़ें तत्कालीन सामाजिक स्थितियों में थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुसलमानों के आगमन को

एक अनिवार्य बुराई की तरह से देखा, उनके आने से यहां के जीवन में क्या अन्तर आया, इसे देखने में वे चूक गए और परिस्थितियों पर समग्रता से विचार किये बिना बहुत सरलीकृत ढंग से भक्तिकाल के साहित्य की उत्पत्ति को साम्प्रदायिक रंग दे दिया।

भारत में सम्प्रदाय के आधार पर हिन्दू और मुसलमान के बीच वैमनस्य व दंगे-फसाद अंग्रेजी शासन के दौरान आरम्भ हुए। अपने शासन को टिकाये रखने के लिए साम्राज्यवादी अंग्रेजी शासकों ने जनता में फूट डालने के लिए लोगों की धार्मिक भावनाओं को उकसाना-भड़काना शुरू किया। इसके लिए उन्होंने इतिहास को तोड़-मरोड़कर इस तरह से प्रस्तुत किया कि पूरा मध्यकाल हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के तौर पर पेश किया। इतिहास का काल-विभाजन व नामकरण धर्म के आधार पर 'हिन्दू काल' व 'मुस्लिम काल' के तौर पर किया, कि जिसमें किसी धर्म विशेष के लोगों का शासन हो और दूसरे धर्म के लोग उनके शासित हों। शासक अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं, चाहे वे किसी भी धर्म से ताल्लुक रखते हों। वे अपने धर्म के आधार पर शासन नहीं करते। अंग्रेजी शासकों ने बड़े चालाकी पूर्ण ढंग से मध्यकालीन शासकों की लड़ाइयों को हिन्दू व मुसलमान की लड़ाई के तौर पर पेश किया, जबकि हिन्दू शासक का दूसरे हिन्दू शासक से लड़ने तथा मुसलमान शासकों के मिलकर किसी शासक से लड़ने के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। भारत में बाबर आया तो वह मुस्लिम शासक इब्राहिम लोधी से लड़ा, हुंमायू और शेरशाह सूरी के बीच घमासान लड़ाई हुई और दोनों मुसलमान थे। महाराणा प्रताप और अकबर की लड़ाई में अकबर का सेनापति हिन्दू राजपूत मानसिंह था, तो महाराणा प्रताप का सेनापति मुसलमान पठान हकीम सूर खान था। गुरु गोबिन्द सिंह की मुगल शासक औरगंजेब के साथ लड़ाई थी तो कितने ही मुसलमानों ने गुरु गोबिंद सिंह का साथ दिया था। शासकों की इन लड़ाइयों के कारण राजनीतिक थे, लेकिन अंग्रेजों ने इनको धार्मिक लड़ाइयों की तरह से प्रस्तुत किया।

हिन्दू और मुसलमान में वैमनस्य पैदा करने के लिए अंग्रेजों ने बहु प्रचारित किया कि मुसलमानों ने हिन्दुओं के मंदिरों को ध्वस्त करके हिन्दुओं का अपमान किया। असल में राजाओं की लड़ाइयों की वजह धार्मिक नहीं, बल्कि राजनीतिक थी, उसी तरह धर्म-स्थलों को गिराने की वजह भी धार्मिक नहीं थी, बल्कि राजनीतिक व आर्थिक थी। उदाहरण के लिए महमूद गजनी ने सोमनाथ के मंदिर को लूटा तो उसका कारण धार्मिक नहीं, बल्कि आर्थिक था। यदि वह धार्मिक कारण से ऐसा करता तो उसके हजारों मील के सफर में सैंकड़ों मंदिर आए,

लेकिन उसने किसी को भी नहीं छुआ। गौर करने की बात यह भी है कि उसकी सेना में बहुत बड़ी संख्या हिन्दू सिपाहियों की थी, उसके बारह सेनापतियों में पांच हिन्दू थे। औरगंजेब ने मंदिरों को गिराया, लेकिन उसने उज्जैन में महाकालेश्वर, चित्रकूट में बाला जी, गुहावटी में उमानन्द मंदिर, शत्रुंजय में जैन मंदिर तथा उत्तर भारत के गुरुद्वारों को अनुदान भी दिए। दिलचस्प बात यह है कि हिन्दू राजाओं ने भी मंदिरों को तुड़वाया, काश्मीर के राजा हर्षदेव ने मंदिरों की मूर्तियों को हटाने के लिए 'देवोत्पतनायक' नामक अधिकारी नियुक्त किया, जो मंदिरों से मूर्तियां हटाता था। इस बात के भी उदाहरण हैं कि मुस्लिम शासकों ने हिन्दू धर्म-स्थलों की रक्षा की। मराठों ने श्रीरंगपट्टनम का मंदिर लूटा और क्षतिग्रस्त किया तो मुस्लिम शासक टीपू सुल्तान ने उसकी मुरम्मत करवाई। धर्म-स्थलों को गिराकर दूसरे धर्म का अनादर करना व उसके मानने वालों का अपमान करने में कोई तथ्य नहीं है, क्योंकि मुस्लिम शासकों ने मस्जिद भी गिरवाई हैं, यदि वे इतने कट्टर धार्मिक थे और धार्मिक कारणों से मंदिर गिरा रहे थे तो वे अपने ही धर्म के पूजा-स्थलों को क्यों ध्वस्त करते? दरअसल मध्यकाल में शासक अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए दूसरे शासकों पर आक्रमण करते थे और उसकी सत्ता के समस्त प्रतीकों को ध्वस्त करते थे, इसीलिए राजाओं ने अपने राज्य की सीमा में धर्म-स्थल नहीं गिरवाए और जहां ऐसा किया वहां किसी धर्म को नीचा दिखाना नहीं, बल्कि राजनीतिक वर्चस्व के लिए ऐसा किया।

मध्यकाल में हिन्दू व मुसलमानों में वैमनस्य के मिथ को प्रचारित करने के लिए तलवार के जोर पर धर्मान्तरण करने को प्रचारित किया गया। "यह आरोप भी सच नहीं है कि मुसलमान शासक ने हिन्दुओं का जबरन धर्मान्तरण करवाया; उससे न सिर्फ मुस्लिम सत्ता का स्थायित्व खतरे में पड़ जाता बल्कि पूरा माहौल ही दूषित हो जाता। हर शासक, सदैव दरबारी साजिशों के खतरे के साए में रहता था और जाहिर है कि आम जनता में भारी असंतोष पैदा करने जैसा कोई कदम उठाना उसके लिए भारी पड़ जाता क्योंकि बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण करवाने से अनिवार्य तौर पर ऐसी हालत खड़ी हो जाती। सुल्तान की पहली और फौरी जिम्मेदारी होती थी अपने अवाम के बीच शान्ति और सौमनस्य स्थापित करना। और, अब यह बात सर्वसम्मत रूप से मानी जा रही है कि कुछ शासकों को अपवादस्वरूप छोड़ दिया जाए तो न खिलजियों (1290-1320) ने, न तुगलकों (1320-1412) ने, न लोदियों (1451-1526) ने और न ही महान मुगल बादशाहों (1526-1707) ने धर्मान्तरण को प्रोत्साहन दिया; यह काम या तो सूफियों ने किया या व्यापारियों ने।"[13]

अंग्रेजों ने हिन्दुओं व मुसलमानों में विद्वेष पैदा करने के लिए धर्मान्तरण को भी तूल दिया और इस झूठ को जोर-शोर से प्रचारित किया कि तलवार के जोर पर इस्लाम का विस्तार हुआ, जबकि ऐतिहासिक तथ्य इसके विपरीत हैं। इस्लाम के प्रसार का कारण मुसलमान शासकों के अत्याचार नहीं थे, बल्कि हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था थी, जिसमें समाज की आबादी के बहुत बड़े हिस्से को मानव का दर्जा ही नहीं दिया गया। इस्लाम में इस तरह के भेदभाव नहीं थे, इसलिए अपनी मानवीय गरिमा को हासिल करने के लिए हिन्दू धर्म में निम्न कही जाने वाली जातियों ने धर्म-परिवर्तन किया। धर्म-परिवर्तन में सूफियों के विचारों की भूमिका है, न कि मुस्लिम शासकों की क्रूरता व कट्टरता की। जो क्षेत्र मुस्लिम शासकों का गढ़ था, वहां धर्मान्तरण कम हुआ, जबकि उनके सत्ता केन्द्रों से दूर धर्म परिवर्तन अधिक हुआ। दिल्ली व आगरा के आसपास मुसलमानों की संख्या दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं है, लेकिन जो आज पाकिस्तान है वहां जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा मुसलमान बना था, जबकि मुस्लिम सत्ता का केन्द्र दिल्ली-आगरा रहा। विख्यात पाकिस्तानी इतिहासकार एस.एम. इकराम ने टिप्पणी की है : "अगर मुसलमानों की आबादी के फैलाव के लिए मुसलमान सुल्तानों की ताकतें ज्यादा जिम्मेदार हैं तो फिर यह अपेक्षा बनती है कि मुसलमानों की अधिकतम आबादी, उन क्षेत्रों में होनी चाहिए, जो मुस्लिम राजनीति शक्ति के केंद्र रहे हैं। लेकिन दरअसल ऐसा नहीं है। दिल्ली, लखनऊ, अहमदाबाद, अहमदनगर और बीजापुर, यहां तक कि मैसूर में भी, जहां कि कहा जाता है कि टीपू सुल्तान ने जबरन लोगों को इस्लाम में धर्मान्तरित करवाया, मुसलमानों का प्रतिशत बहुत कम है। राजकीय धर्मान्तरण के परिणामों को इसी तथ्य से नापा जा सकता है कि मैसूर राज्य में मुसलमान बमुश्किल पूरी आबादी का पांच प्रतिशत हैं। दूसरी ओर, जबकि मालाबार में इस्लाम कभी भी राजनीतिक शक्ति नहीं रहा, लेकिन आज भी मुसलमान कुल आबादी के करीब तीस प्रतिशत हैं। उन दो प्रदेशों में जहां मुसलमानों की सघनतम आबादी है यानी आधुनिक पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में इस बात के साफ-स्पष्ट सबूत हैं कि धर्मान्तरण उन रहस्यवादी सूफी-सन्तों की वजह से हुआ जो सल्तनत के दौरान हिन्दुस्तान आते रहे। पश्चिमी क्षेत्र में तेहरवीं सदी में यह प्रक्रिया उन हजारों धर्मवेत्ताओं, सन्तों, धर्म प्रचारकों की वजह से ज्यादा सुकर बनी जो मंगोलों के आतंक से पलायन कर भारत आए।"[4]

राज घरानों से संबंध बनाने व सत्ता में भागीदारी करने के लिए उच्च जातियों के लोगों ने धर्म परिवर्तन किया, लेकिन निम्न जातियों ने अपनी मानवी गरिमा का अहसास प्राप्त करने के लिए धर्म बदला। विशेष बात यह रही कि धर्म बदलने से

इनकी संस्कृति व सोच में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। ये उन्हीं रिवाजों व प्रथाओं का पालन करते रहे। हरियाणा-राजस्थान के मेवों की संस्कृति से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है।

दिल्ली में तुर्क सल्तनत की स्थापना के समय से ही सुल्तानों ने अपना शासन शरीयत (धार्मिक कानून) के आधार पर नहीं चलाया, बल्कि ''शरीयत की जगह राजनीतिक और सामरिक जरूरतों को ध्यान में रखा गया था। सुल्तान इल्तुमिश के बारे में यह प्रचलित है कि उसके लिए यह हर्गिज जरूरी नहीं था कि वह विश्वास को केन्द्र में रखे। उसके लिए इतना ही काफी था कि उसका अपना विश्वास बना रहे। बलबन के बारे में तो यहां तक कहा जाता है कि वह एक कदम ओर आगे चला गया था। उसने सुल्तान से यह भी अपेक्षा नहीं की कि उसका कोई विश्वास हो ही और न ही उसे किसी धर्म या मत को संरक्षण देने की जरूरत है। उसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया कि उसने कभी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि उसके निर्णय शरीयत के मुताबिक हैं या नहीं। उसने जो कुछ भी राज्य के हित में उचित समझा, उसी का पालन किया। मुहम्मद-बिन तुगलक ने धर्म विशारदों और धार्मिक कानून के संरक्षकों को शासन के ऊपर हावी नहीं होने दिया, बल्कि वह हमेशा ही दार्शनिकों और तर्कशास्त्रियों की संगत पसंद करता था।''[5]

शासक अपने धार्मिक कानून के अनुसार राजनीतिक निर्णय नहीं लेते थे, बल्कि राजनीति के अनुसार वे अपने राज्य के फैसले करते थे। उलेमा और राजाओं के दृष्टिकोण में अन्तर था। अलाऊद्दीन खिलजी की काजी मुघीस से वार्तालाप से इसका अनुमान लगाया जा सकता है। ''उसने कहा मौलाना मुघीस! यद्यपि मुझे कोई ज्ञान नहीं है और मैंने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी है, फिर भी मैं एक मुसलमान के रूप में पैदा हुआ था और मेरे बुजुर्ग कितनी ही पीढ़ियों से मुसलमान हैं। विद्राहों, जिनमें हजारों लोग मारे जाते हैं, को रोकने के लिए मैं लोगों को आदेश देता हूं जो मुझे राज्य और उसके लाभकारी लगते हैं। लेकिन आजकल के लोग दु:साहसी और अवज्ञाकारी हो गए हैं और मेरे आदेशों का सही पालन नहीं करते, इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि मैं उनसे आदेशों की पालना सुनिश्चित करने के लिए उन्हें कड़ी सजा दूं। मैं वे आदेश जारी करता हूं जो मुझे राज्य के लिए लाभकारी और विभिन्न परिस्थितियों में उचित प्रतीत होते हैं। मैं नहीं जानता कि इन आदेशों की शरीयत इजाजत देता है या नहीं। मैं नहीं जानता कयामत के दिन खुदा मेरे साथ क्या बर्ताव करेगा।''[6]

हिन्दी के भक्तिकाल पर विचार करते हुए अधिकांश विद्वानों ने इतिहास के बारे में तथ्य आधारित स्वतंत्र सोच बनाए बिना और अंग्रेजी साम्राज्यवादी हितों को

पूरी करने वाली दृष्टि से लिखित इतिहास पर प्रश्नचिन्ह लगाए बिना, इतिहास के प्रति साम्प्रदायिक दृष्टि को मान लिया और उसी का नतीजा है यह मान लेना कि भक्तिकाल का उद्‌भव मुसलमान शासकों के अत्याचार से बचाव में हुआ।

भक्तिकाव्य के प्रति साम्प्रदायिक रुख अख्तियार करने के कारण ही इसकी मत-मतान्तरिक, ब्रह्म, जीव, जगत, व माया के दार्शनिक-तात्त्विक पक्ष, भक्ति के तात्त्विक पक्ष, साधना के विविध पक्षों की व्याख्याएं की और मूल्यांकन में एकांगी रुख अपनाए जाने के कारण इस साहित्य के सामाजिक आधार की अनदेखी हुई। इस साहित्य में तत्कालीन समाज की आशाओं-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हुई है, लेकिन समग्र दृष्टि से उस पर विचार किया जाना आवश्यक है। ''हिन्दी साहित्य में मध्यकालीन संतों ने वाणी, शब्द, साखी और पद तथा पदावलियों का विश्लेषण आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से किया गया है। किंतु इनके द्वारा समाज के जीवन, सामाजिक मूल्य, उनकी आशाओं-दुराशाओं को प्राय: अनदेखा कर दिया गया हैं कुछ संतों ने समाज में परिव्याप्त आपसी कलह, विद्वेष और भेदभाव की भावना से दूर ऐसे देश, राज्य और समाज की कल्पना की है जो प्रेम और न्याय पर आधारित हो। यह देश एक प्रकार का यूटोपिया या काल्पनिक था, किंतु आशाओं-दुराशाओं के परिचायक भी थे।''[7]

भक्ति आंदोलन के ऐतिहासिक कारणों पर विचार करने की जरूरत है। मुसलमानों के यहां आने से समाज में हुए सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों ने समाज को प्रभावित किया उसके सकारात्मक पक्षों का ही परिणाम है - भक्ति-आंदोलन का काव्य। ''तुर्क शासन के बाद भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आरम्भ हुए। सिंचाई में रहट का व्यापक रूप से प्रयोग आरम्भ हुआ जिससे नदियों के किनारे विशेष रूप से पंजाब और दोआब के क्षेत्र में कपास और अन्य फसलों की पैदावार में बहुत वृद्धि हुई। सूत कातने के लिए तकली के स्थान पर चरखे का व्यापक प्रयोग होने लगा। इसी तरह रुई धुनने में तांत का प्रयोग जन साधारण के लिए महत्त्वपूर्ण बन गया था। कपास ओटने में चरखी का भी प्रयोग शुरू हुआ। तेरहवीं सदी के करघा के प्रयोग से बुनकरों और वस्त्र उद्योग की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कपड़े की रंगाई और छपाई की भी इस बीच व्यापक उन्नति हुई। मध्य एशिया के सीधे सम्पर्क के कारण भारत के व्यापार का भी बहुत प्रसार हुआ। इन नई परिस्थितियों ने व्यापारियों और कारीगरों का सीधा संबंध और गहरा करने में सहयोग दिया। वे व्यापारी कला और संस्कृति के आदान-प्रदान में भी महत्त्वपूर्ण संवाहक सिद्ध हुए।''[8]

मुसलमानों के आगमन से यहां के लोगों के जीवन में नई दृष्टि का संचार हुआ। यहां के लोग नई तकनीक व वस्तुओं से वाकिफ हुए। खेती की व्यवस्था में परिवर्तन से जीवन में मूलभूत परिवर्तन हुआ। सड़कों व नहरों के निर्माण से सामाजिक जीवन में तुलनात्मक रूप से समृद्धि आई। विशेष तौर पर समाज के वे वर्ग अच्छी हालत में पहुंचे, जो कारीगर व श्रमिक थे। इसी वर्ग की आकांक्षाएं कबीर, रविदास व अन्य संतों की कविताओं में नजर आती हैं।

संत कबीर, नानक, रैदास, दादू आदि संतों का तेजस्वी काव्य सांस्कृतिक सम्मिश्रण की स्थितियों से उपजा काव्य है, न कि साम्प्रदायिक द्वेष व घृणा से, जैसा कि साम्राज्यवादी व साम्प्रदायिक इतिहास दृष्टि प्रस्तुत करती है। भारत का समाज दूसरे समाज के सम्पर्क में आया, विचारों का आदान-प्रदान हुआ, व्यापार के नए क्षेत्र खुले, जिसने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को प्रभावित किया। ''तेरहवीं शताब्दी तक भारत में अफगान शासन स्थापित हो चुका था। ईरान, अफगानिस्तान, ईराक एवं अरब के अन्य क्षेत्रों से सैनिक, व्यापारी एवं जिज्ञासु विद्वान विभिन्न उद्देश्यों से भारत आया-जाया करते थे। अल-बरूनी सदृश विद्वानों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति का विस्तृत अध्ययन भी किया था। इस काल में (दसवीं से तेरहवीं शताब्दियों के बीच) कई भारतीय दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक कृतियों का अनुवाद अरबी एवं फारसी में हो चुका था। प्रसिद्ध सूफी संत अब्दुल कलंदरी ने ग्यारहवीं शताब्दी में भारतीय दर्शन के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'योग-वासिष्ठ' का फारसी में अनुवाद किया था। खलीफा हारून-अल-रशीद के समय में पंचतंत्र का अनुवाद अरबी एवं फारसी, दोनों भाषाओं में हो चुका था। इन भाषाओं में इस पुस्तक का नाम 'कलीला-ओ-दिमना' पड़ा। इसकी कथाएं ईरान, ईराक एवं पश्चिम एशिया के अन्य क्षेत्रों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई। शेख फरीदुद्दीन अत्तार के 'इलाहीनामा' एवं 'मुसीबतनामा में पंचतंत्र एवं कथा-सरित्सागर की कई कथाएं कुछ परिवर्तन के साथ मिलती हैं। मौलाना रूमी की 'मसनवी' में भी पंचतंत्र की कई कथाओं का समावेश मिलता है।''[9]

भक्तिकाल के संतों ने परम्परागत तौर पर प्रचलित संस्थागत हिन्दू धर्म और इस्लाम की संरचनाओं के स्थान पर नई प्रणालियों को विकसित किया। वे दोनों धर्मों के धार्मिक आड़म्बरों और पाखण्डों का विरोध करते थे। धर्म के दायरे में रहते हुए भी उसको नई तरह से व्याख्यायित करने की जद्दोजहद की अभिव्यक्ति संत साहित्य में होती है।

जिन निम्न जातियों के लोगों को मुख्य सड़कों पर चलने का अधिकार भी नहीं था, शिक्षा का अधिकार भी नहीं था और जिनको अपनी पहचान बताकर

शहर में प्रवेश करना पड़ता था उन वर्गों से संबंधित रचनाकार अब सरेआम वर्चस्वी वर्ग के लोगों को शास्त्रार्थ की चुनौती देते हैं, आखिर इस तरह के आत्मविश्वास का सामाजिक-सांस्कृतिक कारण व आधार तत्कालीन समाज में इनकी हैसियत के अलावा और क्या हो सकता है? निम्न जातियों से इतने संतों का आना और कबीर-रैदास का आत्मविश्वास इन वर्गों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति की ओर भी संकेत करता है। परम्परागत तौर पर प्रचलित वर्चस्वी विचारों को चुनौती पेश करने वाली सामाजिक शक्तियां जो नए विचारों व परिवेश का स्पर्श पाकर विकसित हो उठी थी, उन्हीं की आकांक्षाओं को संतों की कविताएं वाणी प्रदान करती हैं।

''प्रो. मुहम्मद हबीब ने अपने एक निबन्ध में घटित हुए परिवर्तनों के विश्लेषण का प्रयास किया है। संक्षेप में उनकी स्थापना है कि इस्लाम एक ऐसा धर्म था जो शहरी वातावरण के लिए उपयुक्त था। इसके कानून ने जिसमें संविदा की अवधारणा पर विशेष बल था, जातिगत नियमों की कठोर पाबन्दी का भेदन किया। अतः तुर्की आक्रमण ने कारीगरों को पुराने प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया तथा व्यापार तथा वाणिज्य के विकास के लिए एक नया आधार किया। इस दृष्टिकोण के आधार पर तुर्की विजयों ने 'उपभोग के लिए उत्पादन' की स्थिति को 'बाजार के लिए उत्पादन' में बदलने की प्रक्रिया को शुरू किया। कारीगरों के इस आर्थिक महत्त्व की अभिवृद्धि की अभिव्यक्ति, जो उक्त परिवर्तन का परिणाम रही होगी। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियों में भक्ति आंदोलन में उनकी सहभागिता के रूप में देखी जा सकती है।''

मूरलैंड ने भी अपने अध्ययनों में तुर्कों के शासनकाल को सामंतीय व्यवस्था के टूटने के रूप में देखा है। उनका कहना है कि यह परिवर्तन सल्तनत काल में प्राचीन शासक वर्ग के टूटने के फलस्वरूप अभिजात शासन वर्ग की संरचना और प्रकृति में आए परिवर्तन तथा किसानों को नकद भुगतान की नियमित प्रथा के फलस्वरूप मुद्रा के व्यापक प्रचलन के कारण हुआ। यह भी माना जाता है कि शहर और गांव के बीच बड़े पैमाने पर चलने वाला व्यापार भी चौदहवीं शताब्दी में ही विकसित हुआ था। इरफान हबीब ने इन रूपांतरणों के लिए तुर्कों के आने के बाद नई प्रौद्योगिकी के प्रचलन का बहुत बड़ा योगदान माना है। भारत में चर्खे का इस्तेमाल तेरहवीं शताब्दी से आरंभ हुआ है। चर्खा निश्चित रूप से और धुनियां की कमान संभवत: 13-14वीं शताब्दियों में बाहर से भारत में आए होंगे। इसी प्रकार तुर्क विजय के साथ रहट का प्रचलन कृषि की उत्पादन वृद्धि में बहुत सहायक हुआ है। कागज का पहला टुकड़ा भारत में तेरहवीं शताब्दी के अन्त में दिखाई दिया

है। इरफ़ान हबीब का कहना है कि मध्यकाल में सूचित तीव्र व्यापार और व्यापक उधर प्रचलन पर विचार करते हुए हमें कागज की नई उपस्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। 14वीं शताब्दी तक नकदी में भुगतान व्यापक रूप से प्रचलित हो गया था।

इतिहासकारों का मानना है कि भारत का तीसरा नगरीकरण गौर-तुर्कों के आक्रमण की बदौलत संभव हो सका। तुर्कों ने जब नगरों में प्रवेश किया तो निम्नवर्गीय कामगारों ने उनके साथ-साथ भीतर प्रवेश किया और वे वहीं बस गए. नए शासन को कामगार, उनके परिवार और उनकी कार्यशालाओं की नगर दीवारों के भीतर आवश्यकता थी।

इन तथ्यों से अनुमान लगाया जा सकता है कि तुर्कों के इन व्यापक परिवर्तनों में शिल्पी और किसान वर्ग को पर्याप्त राहत दिखाई दी होगी। आत्मनिर्भर ग्रामीण इकाइयों के टूटने से जाति प्रथा के बंधन ढीले हुए होंगे।.... सामन्तीय संबंधों के ढीले पड़ने, नगरों के उत्थान और बाजार के लिए उत्पादन, नक़दी के भुगतान आदि युगान्तकारी परिवर्तनों के समाज-सांस्कृतिक प्रभावों की अनुक्रिया-प्रतिक्रिया के तदनुरूप कबीर (अन्य संत) अपने साधुजन से संवाद स्थापित कर रहे थे। कबीर (संत) का यह साधुजन शिल्पी वर्ग था जो सामंतीय उत्पादन के जजमानी संबंधों से छुटकारा पाकर नगरों में नए रोजगार के तहत जुट रहा था।''[10]

भक्तिकाल की रचनाओं में हिन्दू और मुस्लिम के बीच कोई अन्तर्विरोध दिखाई नहीं देता। यहां कट्टरता-संकीर्णता व उदारता के बीच अन्तर्विरोध है। कबीर व संत रविदास धर्म के संस्थागत रूप व इस्लाम के संस्थागत रूप की आलोचना करते हैं। दोनों धर्मों के पाखण्डों पर प्रहार करते हैं और दोनों धर्मों के मानवीय तत्त्वों को उभारते हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टि इतिहास पर इतनी हावी है कि वे हिन्दुओं में व्याप्त तमाम बुराइयों का जिम्मा मुसलमानों पर थोंप कर छुट्टी पा जाती है। फिर चाहे पर्दा प्रथा हो या सती हो या बाल विवाह हो सबका कारण मुसलमानों का अत्याचार मान लिया जाता है और सामन्ती जीवन की वास्तविकताओं व अन्तर्विरोधों पर नजर नही जाती। सामन्तवाद साफ तौर पर बरी कर दिया जाता है।

संदर्भ

1. **के. दामोदरन;** भारतीय चिन्तन परम्परा; पृ.-330
2. **कुंवरपाल सिंह;** भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति (भक्ति आंदोलन : प्रेरणास्रोत

एवं वैशिष्ट्य, वासुदेव सिंह का लेख); पृ.-185
3. रफीक जकरिया; बढ़ती दूरियां : गहराती दरार; पृ.-46
4. रफीक जकरिया; बढ़ती दूरियां : गहराती दरार; पृ.-47
5. कुंवरपाल सिंह; पृ.-269 (भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता; प्रो. नुरुल हसन का लेख)
6. असगर अली इंजीनियर; भारत में साम्प्रदायिकता : इतिहास और अनुभव; पृ.-31
7. सावित्री शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.-1
8. कुंवर पाल सिंह; पृ.-274
9. त्रिनाथ मिश्र; मौलाना जलालुद्दीन रूमी; पृ.-118
10. बलदेव वंशी (सं.); कबीर : एक पुनर्मूल्यांकन; पृ.-232 (डा. सेवा सिंह का लेख -संतौं भाई आई ग्यान की आंधी रे)

संत रविदास : धर्म और साम्प्रदायिकता
हिन्दू तुरुक नहिं कछु भेदा

हिन्दी में मध्यकालीन संतों की वाणी को भक्ति आंदोलन के रूप में पढ़ा-पढ़ाया जाता है, और निर्गुण व सगुण धाराओं में विभाजित करके ऐसा दर्शाया जाता है मानो ईश्वर-आराधना को लेकर ही इनमें मतभेद थे। इस पर इतना जोर दिया जाता है कि ऐसा लगता है कि इन संतों और कवियों ने ईश्वर की उपासना को प्रचारित करने के लिए ही अपने काव्य की रचन। की है। इसीलिए इनकी वाणी में मौजूद तत्कालीन समाज की स्थितियों की ओर कम ही ध्यान गया। इस बात को और आगे इस तरह बढ़ाया जाता है कि इनकी ईश्वर-उपासना इनके धर्म-रक्षा करने की रणनीति का हिस्सा थी। पूरे भक्ति आंदोलन को एक धार्मिक-प्रतिक्रिया के रूप में पैदा होने का विचार काफी प्रचलित रहा है। यद्यपि भली प्रकार से विद्वानों ने इसे बार-बार तथ्यहीन व अवैज्ञानिक बताया है, लेकिन राजनीतिक विचारधारा व स्वार्थों के चलते यह अभी भी चेतना का हिस्सा बना हुआ है। रामचन्द्र शुक्ल ने यह कहा था कि मुस्लिम शासकों के आक्रमण से पस्त जाति ने भक्ति के रूप में शरण ली थी इसलिए भक्ति आंदोलन को मुस्लिम आक्रमण से रक्षा के तौर पर देखा गया। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह मत खरा नहीं उतरता। विद्वानों ने इसके विपरीत कहा कि मुस्लिम आक्रमण तो उत्तर भारत में हुए, लेकिन भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से उत्पन्न हुई। इसके अलावा गौर करने की बात है कि निराशा व पराजय बोध से इतना जीवन्त साहित्य उत्पन्न नहीं हो सकता। निराशा व पराजय के साहित्य में तो पस्ती के चित्र ही मिल सकते हैं, जबकि भक्ति काल के साहित्य में तो जिजीविषा व संघर्ष के चित्र हैं।

असल में यह विचार अपने समय के इतिहास बोध की उपज थी, राष्ट्र-आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी चेतना में समाप्रदायिक तत्त्व घुल मिल गए थे। अंग्रेजों

की साम्राज्यवादी दृष्टि का तथा साम्प्रदायिक आधार पर इस देश को विभाजित करने के उनके डिजाइन का भी जाने-अनजाने में प्रभाव है।

आधुनिक काल में साम्प्रदायिक आधार पर समाज को बांटने और विभिन्न धर्मों के लोगों में वैमनस्य व घृणा पैदा करने के लिए इसका प्रयोग किया गया। अब भी साम्प्रदायिकता पर आधारित राजनीति खत्म नहीं हुई है, इसलिए अपनी राजनीति को वैधता देने के लिए अभी भी यह कहा जाता है कि मध्यकाल में हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच नफरत और विद्वेष था।

यदि समाज में धर्म के आधार पर विद्वेष होता तो तत्कालीन साहित्यकार इसका जरूर ही उल्लेख करते। असल में धर्म के नाम पर शासकों ने लोगों की भावनाओं का हर युग में शोषण किया है। भक्तिकालीन संत-कवियों ने धर्म के आधार पर मनुष्य में भेदभाव करने को गलत ही ठहराया है। हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता को उद्घाटित भी किया है।

रविदास हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं उन्होंने अपने समय की केन्द्रीय समस्याओं को उठाया है। उनकी वाणी में साम्प्रदायिक द्वेष का कोई उदाहरण नहीं मिलता, बल्कि ऐसी परम्पराओं का वर्णन अवश्य मिलता है जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि हिन्दू और मुसलमानों में साम्प्रदायिक आधार पर कोई झगड़ा नहीं था, बल्कि दोनों एक-दूसरे के धार्मिक विश्वासों का आदर करते थे।

रविदास ने स्पष्ट तौर पर कहा कि राम और रहीम, कृष्ण और करीम, ईश्वर और खुदा में कोई अन्तर नहीं है। ये सब एक ही हैं। ये मनुष्य के मन में ही बसते हैं, इनको प्राप्त करने के लिए घर त्यागने की जरूरत नहीं है। रविदास के लिए ईश्वर की प्राप्ति किसी कर्मकाण्ड का हिस्सा नहीं है, बल्कि उसके लिए अपने आचरण को पवित्र करने की जरूरत है।

राघो क्रिस्न करीम हरि, राम रहीम खुदाय।
'रविदास' मेरे मन बसहिं, कहुं खोजहूं बन जाय॥

संत रविदास ने बार-बार इस बात को रेखांकित किया है कि जिस ईश्वर को हिन्दू मानते हैं और जिस खुदा को मुसलमान मानते हैं वे कोई अलग-अलग नहीं हैं। वे सब एक ही हैं। सबका मालिक एक ही है, जो लोग ईश्वर के नाम पर लड़ते हैं वे ईश्वर की ही अवहेलना करते हैं। केशव, कृष्ण और करीम सभी एक ही तत्त्व है। रविदास इस बात पर जोर देने के लिए ही बार-बार कहते हैं कि उन्होंने विचार करके देख लिया है कि सिर्फ नाम का ही फर्क है, तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है।

'रविदास' हमारो सांइयां, राघव राम रहीम।
सभ ही राम को रूप हैं, केसो क्रिस्न करीम॥

***

अलख अलह खालिक खुदा, क्रिस्न-करीम करतार।
रामह नांउ अनेक हैं, कहै 'रविदास' बिचार॥

संत रविदास ने न केवल राम और रहीम की एकता के बारे में बार-बार जिक्र किया, बल्कि हिन्दू और मुसलमानों के सबसे पवित्र माने जाने वाले स्थलों के बारे में, जिनमें इन धर्मों के मानने वालों की सर्वाधिक आस्था है, उनमें भी कोई अन्तर नहीं किया। रविदास का मानना था कि काबा और कासी में कोई अन्तर नहीं है।

'रविदास' हमारे राम जोई, सोई है रहमान।
काबा कासी जानीयहि, दोउ एक समान॥

सामाजिक विकास के ऐतिहासिक पड़ाव पर जब से समाज वर्गों में विभाजित हुआ है, तभी से समाज के विभिन्न वर्गों के हित परस्पर टकराते रहे हैं। अपने वर्ग-हितों की रक्षा के लिए और अपने शत्रु या विरोधी वर्ग के हितों के विरुद्ध समाज में समीकरण बनते रहे हैं। जिस वर्ग का समाज की संपत्ति पर अधिकार रहा है वह अपना अधिकार बनाए रखने के लिए समाज के अन्य वर्गों को एकजुट नहीं होने देता। समाज में जितना विभाजन रहेगा उतना ही वर्चस्वी वर्ग के हित सुरक्षित रहेंगे, इसलिए वर्चस्वी वर्ग समाज के विभिन्न समुदायों को परस्पर लड़ाने के लिए कुछ न कुछ आधार निर्मित करते हैं। समाज में एक साथ ही कई स्तरों पर टकराहटें चलती रहती हैं, जिनमें अधिकांश इस तरह की होती हैं कि उनके साथ ही समाज चलता रह सकता है। लेकिन कुछ टकराहट ऐसी भी होती हैं कि उनके चलते एक समय के बाद समाज आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए समाज के विकास के लिए इनको दूर करना अनिवार्य हो जाता है। यह टकराहट बाधा बन जाती है। शासक वर्गों की चालाकी इसमें होती है कि वे उन टकराहटों को मुख्य टकराहट के रूप में पहचानते हैं जो वास्तव में मुख्य नहीं होती।

मध्यकाल में कई तरह की पहचानें समाज में थीं। एक पहचान धर्म के आधार पर भी थी। विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ रहते थे। यद्यपि विभिन्न धर्मों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं था, लेकिन विभिन्न धर्मों के आभिजात्य वर्ग के मानने वालों के स्वार्थों में टकराहट थी। शासक वर्ग के लोगों ने इस टकराहट को धर्मों की टकराहट के तौर पर पेश करने की कोशिश की। रविदास जैसे संतों ने उनकी

इस चालाकी को पहचान लिया और साफ तौर पर कहा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। कोई प्राकृतिक अन्तर भी नहीं है। हिन्दू व मुसलमान दोनों के दो-दो हाथ, दो-दो पैर, दो-दो काल और दो-दो आंखें हैं। जब दोनों की बनावट एक जैसी है तो दोनों को अलग कैसे माना जाए? मूलत: दोनों एक ही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है जिस तरह सोने और सोने के कंगन में कोई अन्तर नहीं है। सोने से ही कंगन बना है, उसी तरह हिन्दू और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व की उपज हैं। रविदास ने कहा कि हिन्दू माना जाने वाला ब्राह्मण और मुसलमान माना जाने वाला मुल्ला सबको एक ही नजर से देखना चाहिए, उनमें कोई मूलभूत अन्तर नहीं है।

जब सभ करि दो हाथ पग, दोउ नैन दोउ कान।
'रविदास' पृथक कैसे भये, हिन्दू मुसलमान॥

***

'रविदास' कंगन अरू कनक मंहि, जिमि अंतर कछु नांहि।
तैसउ अंतर नहीं, हिन्दुअन तुरकन मांहि॥

***

'रविदास' उपजइ सभ इक नूर तें, ब्राह्मण मुल्ला शेख।
सभ को करता एक है, सभ कूं एक ही पेख॥

रविदास ने इस बात को पहचान लिया था कि हिन्दू और मुसलमान के आधार पर भेदभाव करना असल में जन सामान्य की एकता को तोड़ना है। शासक वर्ग अपना शासन कायम रखने के लिए जन-सामान्य की एकता तोड़ते हैं और शासित-वर्ग की मुक्ति एकता को कायम रखने में हैं। शासक वर्ग द्वारा धर्म के आधार पर जो विभाजन करना चाहा था रविदास ने समाज में एकता बनाए रखने के लिए उसका विरोध किया। धर्म के नाम पर समाज में वैमनस्य पैदा करना मानवता के प्रति अपराध है, जबकि धर्म के आधार पर कोई भेद ही नहीं है। संत रविदास ने हिन्दू और मुस्लिम में कोई अन्तर नहीं किया।

'रविदास' पेखिया सोध करि, आदम सभी समान।
हिन्दू मुसलमान कऊ, स्त्रिष्टा इक भगवान

***

मुसलमान सों दोसती, हिंदुअन सों कर प्रीत।
'रविदास' जोति सभ राम की, सभ हैं अपने मीत॥

***

हिंदू तुरुक मंहि नहीं कुछ भेदा, सभ मंह एक रत्त अरु मासा।
दोऊ एकहू दूजा कोऊ नांहि, पेख्यो सोध 'रविदासा'॥

***

हिंदू तुरुक मंह नहीं कुछ भेदा, दुइ आयहू एक द्वार।
प्राण पिंड लोहु मांस एकहू, कहि रविदास बिचार॥

रविदास के लिए धर्म वर्चस्व स्थापित करने का साधन नहीं, बल्कि एक नैतिक सत्ता है, जिसे अपनाकर ही सच्चा धार्मिक हुआ जा सकता है, न कि धार्मिक पाखण्ड को अपना कर। सच्चे अर्थों में धार्मिक व्यक्ति ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता मानता है और ईश्वर के समक्ष सभी धर्मों के मानने वाले बराबर हैं।

साम्प्रदायिकता की विचारधारा इस मूल बात के विपरीत है। साम्प्रदायिकता की शुरुआत ही भेदभाव से होती है। एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्म के लोगों से श्रेष्ठ मानना साम्प्रदायिक विचारधारा का लक्षण है। साम्प्रदायिकता की विचारधारा विभिन्न धर्मों के लोगों को ही श्रेष्ठ व निम्न की श्रेणियों में विभाजित नहीं करती, बल्कि ईश्वर में तथा पूजा-स्थलों में भी श्रेष्ठता-निम्नता की श्रेणियां बना देती है। संतों ने इन श्रेणियों को नहीं माना और इन विचारों की वैधता को समाप्त करने के लिए अपनी ऊर्जा लगाई। संत कबीर के बारे में प्रसिद्ध है कि वे स्थानों के बारे में भेदभाव व ऊंच-नीच की मान्यता को तोड़ने के लिए जिस काशी में पूरी उम्र रहकर पण्डों के साथ जूझते रहे जीवन के अंतिम समय में उसे छोड़कर मगहर में चले आए। मगहर के बारे में विश्वास था कि यहां पर मरने वाला व्यक्ति नरक में जाता है और काशी में मरने वाले को स्वर्ग मिलता है। पण्डों के इस विचार पर प्रहार करने के लिए ही वे यहां आए थे।

क्या काशी क्या उसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा, रामै कौन निहोरा॥

काशी हो या उजाड़ मगहर, मेरे लिए दोनों बराबर हैं, क्योंकि मेरे हृदय में राम बसे हुए हैं। अगर कबीर की आत्मा काशी में तन को तजकर मुक्ति प्राप्त कर ले तो इसमें राम का कौन सा अहसान है।

संत रविदास ने साम्प्रदायिक दृष्टि अपनाकर मनुष्यों में भेदभाव को स्वीकृति नहीं दी, बल्कि मानवतावादी दृष्टि को अपनाकर मनुष्यों में धार्मिक व सामाजिक एकता व बराबरी को मान्यता दी।

कहा जा सकता है कि दलित-चिन्तकों व साहित्यकारों की परम्परा ने साम्प्रदायिक विचारों को शुरू से ही नकारा। दलित-मुक्ति का आदर्श रहा है।

समाज में बराबरी की चाह पैदा करना तथा इसे हासिल करने के लिए प्रेरित करना। संत रविदास ने अपने अनुयायियों के लिए स्पष्ट रास्ता बताया है कि साम्प्रदायिकता की विचारधारा को मान्यता देने का अर्थ है। समाज में सामाजिक भेदभाव, शोषण व अन्याय को वैधता देना। वर्तमान दलित आंदोलन व चिन्तन संत रविदास से इस संबंध में प्रेरणा ले सकता है।

संत रविदास के समकालीन संतों ने तथा उनकी परम्परा के कवियों ने साम्प्रदायिक सद्भाव को अपनी वाणी का विषय बनाया है। ये कवि सभी धर्मों की शिक्षाओं का आदर करते थे तथा उनको अपने जीवन में उतारने पर बल देते थे। सभी धर्मों के दार्शनिक सिद्धांतों पर विचार-विमर्श करते थे तथा सभी धर्मों के बाहरी आडम्बरों का विरोध करते थे। धर्म की शिक्षाओं को व्यवहार में लाने वाला, सिद्धान्तों पर तर्क-वितर्क करने वाला तथा कर्मकाण्डों की आलोचना करने वाला व्यक्ति साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। साम्प्रदायिकता न तो विचार-विमर्श व तर्क को बढ़ावा देती है और न ही धर्म की शिक्षाओं को आचरण में उतारने पर जोर देती है। साम्प्रदायिकता तो मात्र आडम्बरों-कर्मकाण्डों व धार्मिक चिन्हों पर जोर देती है। इस तरह साम्प्रदायिकता मध्यकालीन समस्त संतों की विचारधारा के विरुद्ध है।

मध्यकालीन संतों को विभिन्न धर्मों में कोई मूलभूत अन्तर नजर नहीं आया। लोगों के जीवन में भी कोई अन्तर नहीं था, चाहे वे किसी भी धर्म से ताल्लुक क्यों न रखते हों। शासक वर्गों का जीवन एक सा था, चाहे वे अलग-अलग धर्मों से ताल्लुक क्यों न रखते हों। संतों का किसी एक धर्म से विरोध नहीं था, बल्कि वे सभी धर्मों में व्याप्त बुराइयों का विरोध करते थे। शायद इसी का परिणाम है कि हिन्दू-पण्डे और मुस्लिम-मुल्ला दोनों इकट्ठे होकर कबीर के खिलाफ तत्कालीन शासक सिकन्दर लोदी के पास शिकायत लेकर गए थे। संस्थागत धर्म के पोषक धार्मिक तत्ववादी हमेशा ही समाज की प्रगतिशील शक्तियों के खिलाफ रहे हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा भी धर्म के प्रगतिशील रूप को नष्ट करके रूढ़िवादी व साम्प्रदायिक रूप को स्वीकारती है। संस्थागत धर्म ही धर्म-स्थलों को बढ़ावा देता है, उनके भव्य निर्माण पर जोर देता है और धर्म के नाम पर तमाम बुराइयों के संरक्षण की शुरुआत भी यहीं से होती है। संत रविदास व अन्य संतों ने अपनी धार्मिक-आध्यात्मिक जिज्ञासा व जरूरतों को पूरा करने के लिए किसी धर्म-स्थल के निर्माण पर जोर नहीं दिया। सच्चा धार्मिक व्यक्ति कभी धार्मिक स्थलों के लिए दूसरे धर्म के लोगों से नहीं लड़ता और न ही दूसरे धर्म के पूजा-स्थलों को गिराने या नुक्सान पहुंचाने के काम को धार्मिक कार्य मानता है। मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर

व गुरुद्वारों के लिए लड़ने वाले लोग रविदास व अन्य संतों की दृष्टि में धार्मिक नहीं हैं। संत रविदास ने लिखा है कि ईश्वर भक्त को अपने इष्ट की आराधना करने या ढूंढने के लिए किसी पूजा-स्थल में जाने की जरूरत नहीं है।

तुरुक मसीति अल्लह ढूंढइ, देहरे हिंदू राम गुंसाई।
'रविदास' ढूंढिया राम रहीम कूं, जंइ मसीत देहरा नांहि॥

***

देहरा अरु मसीत मंहि, 'रविदास' न सीस नवांय।
जिह लौं सीस निवावना, सो ठाकुर सभ थांय॥

***

रविदास न पुजहूं देहरा, अरु न मसजिद जाय।
जंह जंह ईस का वास है, तंह-तंह सीस नवाय॥

***

हिंदू पूजह देहरा, मुसलमान मसीति।
'रविदास' पूजह उस राम कूं, जिह निरन्तर प्रीति।

संत रविदास की परम्परा के कवि हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति कटिबद्ध थे। संतों ने साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए लेखनी चलाई। कबीर, नानक, पलटूदास, मलूकदास, दादूदयाल आदि सभी संतों ने साम्प्रदायिक सद्भाव की मिसाल कायम की है। संत सामान्य जनता के जीवन व आकांक्षाओं को अपनी रचनाओं में व्यक्त कर रहे थे और आम जनता में परस्पर विश्वास पैदा करने के लिए अपनी कलम चला रहे थे।

कबीर ने लिखा

भाई रे दुई जगदीश कहां ते आया, कहुकौन भरमाया
अल्लाह, राम, करीम, केशव, हरि हजरत नाम धराया।
गहना एक कनक में गढना, इनि मंह भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुर करि पापिन, इक निमाज इक पूजा॥
यही महादेव वही महंमद, ब्रह्मा-आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमीं पर रहिये॥
बेद कितेब पढ़े वे कुतुबा, वे मौलाना वे पांडे।
बेगरि बेगरि नाम धराये, एक मटिया के भांडे॥

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं माना। हिन्दुओं के राम और मुसलमानों के खुदा में कोई भेद नहीं है। गुरु ने यही उपदेश दिया है।

हिन्दु तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो संतों राम न कहेउ खोदाई॥

गुरु नानक ने हिन्दू और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं किया। उन्होंने कहा कि बेईमान व्यक्ति ईश्वर के नाम पर लड़ते हैं।

बन्दे एक खुदाय के हिन्दु मुसलमान,
दावा राम रसूल कर, लडदे बेईमान।'

दादू दयाल ने हिन्दू और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं माना। दादूदयाल अल्लाह और राम में कोई भेद नहीं करते थे, उनके लिए ये दोनों बराबर थे। वे एक ईश्वर को मानते थे, मंदिर-मस्जिद के झगड़े को झूठा समझते थे। वे मूल तत्व को पकड़ने की बात करते थे। दादूदयाल ने मंदिर और मस्जिद दोनों का ही विरोध किया है, क्योंकि वे धर्म के आंतरिक स्वरूप में विश्वास करते थे और बाहरी कर्मकाण्डों का विरोध करते थे।

अलह कहो, भावे राम कहो, डाल तजो, सब मूल गहो।

***

दोनों भाई हाथ, पग, दोनों भाई कान
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दु मुसलमान।

***

दादू ना हम हिन्दू होहिंगें, ना हम मुसलमान,
षट् दर्शन में हम नहीं, हम राते रहिमान।

दादूदयाल ने ईश्वर को एक माना, उसको अनेक नामों से राम, रहीम, केशव, गोबिन्द, गोपाल, गोसाई, साई, रब्ब, अल्लाह, ओंकार, वासुदेव, परमानन्द, साहिब और सुल्तान, गरीब-निवाज तथा बंदिछोर नामों से संबोधित किया :

अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना, केशव नाम करीम।

***

कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुल्तान।

पलटूदास ने भी संत रविदास की तरह धर्म के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं किया। वे दोनों को ही अपनी फसल मानते थे और दोनों को बराबर का महत्व देते थे।

मुसलमान है रब्बी मेरा हिन्दू भया खरीफ।
हिन्दू भया खरीफ दोऊ हैं फसिल हमारी॥

दोनों को समझाया ज्ञान के दफ्तर खोल।
मुसलमान हैं रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ।

संत मलूकदास ने धर्म के आधार पर अन्तर नहीं कियाऔर सबको एक ही तत्व की उपज माना है।

सर्वव्यापी एक कोहरा, जाकी महिमा और न पारा।
हिन्दु तुरुक का एकै करता, एकै ब्रह्मा सबन को भरता॥

रविदास व अन्य संतों ने संस्थागत धर्म को त्यागकर उसके मानवीय पक्ष को उभारा। संस्थागत धर्म में संकीर्णता, कट्टरता, रूढ़िवादिता का समावेश होने के कारण अन्ततः वह साम्प्रदायिक चेतना व साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देता है, जबकि धर्म का मानवीय पहलू मनुष्य को संकीर्णताओं से बाहर निकालता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रविदास के मानवीय धर्म पर उचित ही टिप्पणी की है कि ''अन्य संतों की तुलना में महात्मा रविदास ने अधिक स्पष्ट और जोरदार भाषा में कहा है कि 'कर्म ही धर्म है'। उनकी वाणियों से स्पष्ट होता है कि भगवद्भजन, सदाचारमय जीवन, निरंहकार वृत्ति और सबकी भलाई के लिए किया जाने वाला कर्म, ये ही वास्तविक धर्म है।'' संत रविदास के राम दूसरे धर्म-सम्प्रदाय के लोगों को डराने-धमकाने के काम नहीं आते, उनका राम मनुष्य में विश्वास जगाता है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं को उद्घाटित करने के लिए इसका सहारा लिया। ''सामाजिक विषमताओं का विरोध निर्गुण भक्ति धारा में ही हुआ है जैसा कि धन्ना जाट, कबीर, रविदास, दादू आदि की रचनाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है. ये सभी निम्न जाति के थे यद्यपि इन्होंने अपने प्रतीक सगुण भक्तिधारा से ही लिए थे परन्तु उनको एक नया अर्थ प्रदान किया था। यह अर्थ उनके सामाजिक परिवेश से सार्थक संबंध रखता था। प्रतीकों के साम्य से ही आंदोलनों की एकरूपता, उनके उद्देश्यों की एकमूलता नहीं सिद्ध हो जाती। विभिन्न परिस्थितियों में एक ही प्रतीक के भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। आज के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में 'राम-भक्ति'की दुहाई देकर जिस प्रकार की एकरूपता और सामाजिक-सांस्कृतिक समाकलन करने का प्रयत्न किया जा रहा है उसके विचार तत्त्व एवं उद्देश्य का प्राचीन एवं मध्ययुगीन भक्ति परम्पराओं से कोई साम्य नहीं है। राजनीतिक उद्देश्यों से चला गया यह आंदोलन भक्ति की समन्वयवादी प्रवृत्ति के स्थान पर असहिष्णु अलगाववाद को ही प्रश्रय दे रहा है।''[1]

संत रविदास व उनकी परम्परा के संतों-भक्तों ने समाज में साम्प्रदायिक विचारधारा के आधार धार्मिक तत्त्ववाद पर प्रहार करके एकता के तत्त्वों को

स्थापित किया था। तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़िवादी तत्त्वों ने इन संतों का विरोध किया था। साम्प्रदायिक सद्भाव संत रविदास व अन्य संतों की वाणी का अपरिहार्य संदेश है, जो आज भी प्रासंगिक है और आज के समाज के बारे में इस समस्या पर विचार करने पर विवश करता है और मानवता के पक्ष को मजबूत करने के लिए साम्प्रदायिक तत्वों का विरोध करने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ

1. कुंवरपाल सिंह (सं.); भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति; पृ.64; (सुवीरा जायसवाल का लेख, प्राचीन काल में भक्ति का स्वरूप: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य)

संत रविदास : जाति और वर्ण

जात-जात में जात है, ज्यों केलन में पात

भारतीय समाज जातियों में विभाजित रहा है। समाज के प्रभावशाली लोगों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए इस तरह का विभाजन किया। जाति का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर एक जैसा नहीं है। जाति-व्यवस्था की श्रेष्ठता की मान्यता के कारण किसी को तो सभी अधिकार बिना किसी योग्यता के ही मिल जाते हैं और कोई-कोई समस्त गुण सम्पन्न होते हुए भी वैधानिक, मानवीय और यहां तक कि प्राकृतिक अधिकारों से भी वंचित हो जाता है। इसलिए जाति का अर्थ समाज में सबके लिए एक जैसा न होकर अलग-अलग हो जाता है किसी के लिए जाति एक प्रथा है, जिसका हर कीमत पर पालन करना है। किसी के लिए एक दंभ बन जाता है, कोई इसे एक भ्रम ही समझता है, एक मानसिकता है, एक मिथक है, एक अंधविश्वास है, एक रूढ़ि है, किसी के लिए यह एक चेतना है, जिसे वह धारण किए हुए हैं और किसी के लिए अभिशाप, गुलामी और शोषण का माध्यम है।

जाति-व्यवस्था को लेकर भारतीय समाज में समय-समय पर विभिन्न वर्गों की प्रतिक्रियाएं होती रही हैं। जाति कोई स्थिर वस्तु या स्थिति नहीं रही, बल्कि यह समय व स्थिति के अनुसार बदलती रही है। सामाजिक-आर्थिक हैसियत बदलते ही जाति की सामाजिक स्थिति भी बदलती रही है।

जाति भारतीय धर्म व नीति के विमर्श के केन्द्र में रही है। वर्णों की उत्पत्ति और वर्ण-धर्म के पालन का आग्रह स्मृतियों के केन्द्र में रही है। वर्णों की उत्पत्ति और वर्ण-धर्म के पालन का आग्रह स्मृतियों और अन्य ग्रंथों में भरा पड़ा है। राजा को जाति-व्यवस्था के पालन के निर्देश दिए गए हैं और राजाओं ने भी जाति आधारित व्यवस्था को ही अपनाने में समझदारी दिखाई। वे समाज के प्रभावशाली लोगों को नाराज करके अपना शासन कायम नहीं रख सकते थे। इसलिए मुस्लिम

शासकों ने भी जाति प्रथा को तोड़ना तो क्या बल्कि इसे मजबूती ही प्रदान की और अंग्रेज, जो तमाम आधुनिक प्रगति का दावा करते रहे, उन्होंने भी प्रथा को न केवल यथावत कायम रखा, बल्कि अधिक मजबूत किया 'यह सच है कि अंग्रेजी राज्य में जाति प्रथा अधिक कठोर हुई। यह तो इसी बात से देखा जा सकता है कि व्यक्ति के नाम के साथ उसकी जाति के नाम जोड़ने का सिलसिला जितने बड़े पैमाने पर 19वीं सदी और फिर 20वीं सदी में देखा गया उतने बड़े पैमाने पर ऐसा सिलसिला भारत में कभी था ही नहीं। वर्ण का महत्त्व अधिक था। वर्ण के अंतर्गत छोटी-छोटी जातियों का महत्त्व नहीं था। तीन-चार जातिवाचक शब्द शर्मा, भट्ट, मिश्र आदि संस्कृति ग्रंथों में पण्डितों के नाम के साथ मिलते हैं। लेकिन आधुनिक काल में व्यक्ति के पचासों नये जाति सूचक शब्द जोड़े जाने लगे। तो अंग्रेजी राज्य की परिस्थितियों में यह सब हुआ। ऐसा अकारण नहीं हुआ। अंग्रेज इस बात को प्रोत्साहन देते थे कि लोग अपनी जाति का नाम बराबर लिखें। सरकारी नौकरी के लिए आवेदन-पत्र देना हो तो उसमें जाति का उल्लेख करना जरूरी होती था। शिक्षा संस्था में भर्ती होना हो तो वहां भी जाति का नाम लिखना आवश्यक था। अंग्रेजों ने एक काम और किया। कुछ बिरादरियों को उन्होंने अधिक शूरवीर मान लिया, इनको फौज में विशेष रूप में नौकरी मिलनी चाहिए। कुछ जातियां शूरवीर हो गयीं, कुछ अन्य जातियां विद्या के लिए विशेष योग्य मानी गयी। शेष जातियां केवल सेवा करने को योग्य रह गई। इस तरह अंग्रेजी राज में जाति-प्रथा को नया जीवन मिला।"[1]

देखने की बात है कि शासकों ने जहां जाति-प्रथा को स्थापित करने में रुचि ली, वहीं समाज सुधारकों ने इसके विरुद्ध संघर्ष किया। महात्मा बुद्ध, महावीर जैन के आंदोलनों के बाद सिद्धों-नाथों से होती हुई कबीर, नानक, रविदास आदि संतों की वाणी व संघर्ष में इसके विरुद्ध आंदोलन मुख्य रहा है। इन संतों ने इस बात को पहचान लिया था कि जाति के रहते हुए समाज में मानवता स्थापित नहीं हो सकती। मानवता और जाति में मूल रूप से ही विरोध है। जाति की कब्र पर ही मानवता की नींव रखी जा सकती है।

''ब्राह्मणवाद और बुद्ध के महासंग्राम के समय से ही जाति का सवाल भारतीय सभ्यता और समाज के इतिहास का बड़ा अनसुलझा सवाल रहा है और अदम्य सवाल भी। हजारों सालों के संघर्षों के बावजूद इस सवाल का हल न होना ब्राह्मणवादी व्यवस्था की और उससे जुड़ी शक्ति और संपत्ति की व्यवस्थाओं की मजबूती का प्रमाण है। लेकिन अगर यह सवाल हजारों साल तक अदम्य रहा और वराबर बाहरी सामाजिक संकटों को जन्म देता रहा तो इससे यह बात भी साबित

होता है कि प्रभुत्त्व की व्यवस्था की वहशी ताकत अपनी जगह, उस व्यवस्था की व्यापक जन-स्वीकृति में बराबर दरारें भी पड़ती रहती है। उत्पीड़ित वर्ग बराबर खड़े होकर उत्पीड़ित होते रहने से इंकार करता है और हमारे समाज के बेहतरीन और सबसे ज्यादा प्रगतिशील तत्त्वों ने इस सवाल को जिन्दा रखा है। मेरा अपना विचार यह है कि जाति-विरोधी सामाजिक समतावादी विचारधारा से लैस भक्ति-सूफी परंपरा ने, जो भारत के लगभग हर क्षेत्र और भाषा में व्याप्त रही है, प्रभुत्वशाली समाज के विश्वासों और उसके द्वारा गढ़े गए औचित्य के सामने संकट पैदा करने और उसे गहराने में भारी योगदान दिया है।''[12]

संत रविदास ने पहचान लिया था कि समाज में जाति के विष की अनेक परते हैं। समाज में जाति के अन्दर जातियां मौजूद हैं। जैसे केले के पत्तों में पत्ते होते हैं, उसी तरह से जातियां समाज में हैं। जाति-व्यवस्था का महल इस तरह से खड़ा है जैसे कि केले के पत्ते बुने हुए हैं। जाति-व्यवस्था का ढांचा हर स्तर पर मौजूद है। यह समाज में विभिन्न स्तर पर बना देता है और लोगों में स्थायी विभाजन पैदा करता है। रविदास ने इस बात को भी पहचान लिया था कि जाति-व्यवस्था के रहते मनुष्य-मनुष्य में भाईचारा कायम नहीं हो सकता। वे एक-दूसरे के निकट नहीं आ सकते। जब तक समाज से जाति का नाश नहीं हो जाता, तब तक मानवों में एकता कायम नहीं हो सकती। मानव जाति की एकता और मनुष्यता के मूल्यों के प्रसार व स्थापना में जाति सबसे बड़ी बाधा है। इसीलिए रविदास ने लिखा कि :

जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग।
मानुषता कूं खातइह, जात कर रोग॥

***

जात जात में जात है, ज्यों केलन में पात।
'रविदास' न मानुष जुड़ सकैं, जौं लौं जात न जात॥

जाति के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव करने को संत रविदास ने मनुष्यता का अपमान समझा। उनका मानना था कि सभी मनुष्यों को एक ही भगवान ने बनाया है, सबके बनाने वाला एक ही ईश्वर है, वह सब में समान रूप से मौजूद है। उसी से सबका विस्तार हुआ है, इसलिए जो वर्ण-अवर्ण, ऊंच-नीच पर विचार करते हैं, वे मूर्ख हैं। वर्ण या जाति के आधार पर भेद करने वालों को अज्ञानी व मूर्ख बताना असल में ब्राह्मणवादी विचारधारा को सिरे से नकारना है। ''ईश्वर के सम्मुख सभी प्राणियों की समानता का सिद्धांत उस नई सामाजिक चेतना का द्योतक था, जो सामन्ती शोषण के विरुद्ध जूझने वाले किसानों और कारीगरों में फैल रही थी। व्यक्ति के गुणों और योग्यताओं पर जोर। जो ऊंची

जाति अथवा किसी विशिष्ट वंश में जन्म लेने के फलस्वरूप प्राप्त सुविधाओं के विपरीत था। 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' की अभिव्यक्ति था।''[3]

एकै माटी के सभ भांडे, सभ का एकौ सिरजन हारा।
'रविदास' ब्यापै एकौ घट भीतर, सभकौ एकै घड़ै कुम्हारा॥

***

'रविदास' उपिजइ सभ इक बुंद ते, का ब्राह्मण का सूद।
मूरिख जन न जानइ, सभ मंह राम मजूद॥

***

'रविदास' इकही बूंद सों, सभ ही भयो बित्थार।
मूरिख हैं जो करत हैं, बरन अबरन विचार॥

***

सभ महिं एकु रामहु जोति, सभनंह एकउ सिरजनहारा।
'रविदास' राम रामहिं सभन मंहि, ब्राह्मण हुई क चमारा॥

***

नीच नीच कह मारहिं, जानत नाहिं नदान।
सभ का सिरजहार है, 'रविदास' एकै भगवान॥

संत रविदास जिस समय में हुए उस समय धर्म-संबंधी चिंतन ही मानव-जीवन व चिंतन के केन्द्र में था। उस समय सोचने के ढंग में ईश्वर की उपस्थिति लगभग अनिवार्य सी थी। उसे दूर करके सोचा ही नहीं जाता था। विज्ञान की खोजों ने अभी यह सिद्ध नहीं किया था कि जीवन विकसित हुआ है, इसके विपरीत यही माना जाता था कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है। संसार में मौजूद तमाम चीजों का निर्माता ईश्वर ही है। इसलिए ईश्वर के समक्ष ही मानव मानव में भेद न मानने के तर्क को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त थी। संत रविदास भी बार-बार इस बात को अपने दोहों में कहते हैं कि कथित उच्च जाति व कथित नीच जाति के लोगों को भगवान ने ही बनाया है और जब ईश्वर ने ही सबको बनाया है तो उनमें ऊंच-नीच कैसे हो सकती है। असल में ऊंच-नीच की सामाजिक निर्मिति को संत कवि ईश्वर निर्मित के हवाले से समाप्त करना चाहते हैं। यद्यपि प्रारम्भ में जाति व वर्ण के निर्माताओं ने ईश्वर के हवाले से ही वर्णों के ऊंच-नीच को वैधता देने की कोशिश की थी, लेकिन जल्दी उन्होंने इसको गुण के आधार पर स्थापित करने की बात कही थी और इसके पेशागत आधार को भी तर्क के तौर पर प्रस्तुत किया था। यद्यपि जन्म से वर्ण को मानना तो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है, लेकिन गुणों के आधार पर भी इसे स्वीकार इसलिए नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें भी एक

सांसारिक काम और दूसरे सांसारिक काम में भेदभाव किया जाता है और इस आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव किया जाता है। ''यद्यपि संत रविदास के प्रयासों से समाज में ऊंच-नीच और जात-पांत के विचारों में कोई विरोध परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने नीच जाति के लोगों को सामाजिक बंधनों से ऊपर उठने का एक मार्ग दिखाया और यह भी बताया कि नीच जात के लोगों को आत्म सम्मान का जीवन बिताना चाहिए। वह कहते हैं कि :

जाकि छोति जगत कऊ लागै ता पर तुहीं ढरै।
नीचहु ऊंच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै।

जिसकी जाति जगत कहता है कि नीची है, वह बात तू भी मान लेता है, किंतु ऊंच-नीच करने वाला तो भगवान है, तू किसी से क्यों डरता है।''[4] संत रविदास की यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और वर्तमान दलित-मुक्ति आंदोलन व चिन्तकों का विशेष ध्यान आकर्षित करती है। ब्राह्मणवादी विचारधारा ने अपनी जगह समाज में इस तरह बनाई है कि जिन वर्गों व समुदायों के वह खिलाफ है, वे भी उसको आदरणीय मानकर अपने व्यवहार का हिस्सा बनाए हुए हैं व उसकी नैतिकता और मूल्य-चेतना ही मुख्यतौर पर उनको पारिचालित करती है। दलित-मुक्ति आंदोलन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती के तौर पर यही बात रही है कि ब्राह्मणावादी विचारधारा से दलितों को कैसे मुक्त किया जाए। जब तक दलित वर्ग इसे संजोये रहेंगे और इससे परिचालित होंगे तब तक समाज में ब्राह्मणवाद का प्रभुत्व बना रहेगा।

संत रविदास ने जन्म के आधार पर जाति-प्रथा या वर्ण-व्यवस्था को मानने से स्पष्ट इनकार कर दिया। जन्म को इसका आधार न मानकर व्यक्ति के कर्म को इसका आधार माना। उन्होंने कहा कि जन्म के कारण न तो कोई ऊंचा होता है और न ही नीचा। मनुष्य को उसके काम ही ऊंचा या नीचा बनाते हैं। मनुष्य के जन्म को मुख्य न मानकर उसके कामों पर ही विचार करना चाहिए। बात बिल्कुल सही है कि जन्म पर किसी का अधिकार नहीं हैं लेकिन संसार में अच्छे या बुरे काम करना काफी कुछ व्यक्ति पर निर्भर करता है।

'रविदास' जन्म के कारनै, होत न कोउ नीच।
न कूं नीच करि डारि है, ओचे कम कौ कीच॥

***

जन्म जात कूं छांडि करि, करनी जात परधान।
इह्यौ बेद कौ धरम है, करै 'रविदास' बखान॥

संत रविदास ने समाज में प्रचलित मनुस्मृति की व्यवस्था को नकारा। मनुस्मृति में वर्ण को जन्म के आधार पर मान्यता दी गई थी लेकिन कर्म का सिद्धांत भी पुनर्जन्म के साथ मिलकर जाति-विभाजन को औचित्य प्रदान करता है। इसीलिए जाति-चेतना का पीढ़ी-दर-पीढ़ी का पुनर्जन्म हो रहा है। कभी यह आर्थिक ईकाई के तौर पर स्थापित रही, तो कभी सामाजिक ईकाई के तौर पर। वर्तमान में इसके ये आधार टूट रहे हैं तो यह राजनीतिक ईकाई के रूप में मजबूत हो रही है। ''रविदास ने अपने सामाजिक चिंतन में समाज में ऊंच-नीच की भावना का खंडन किया और वर्णाश्रम-व्यवस्था का जमकर विरोध किया। उनके विचार में ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और क्षत्रिय, डोम, चमार और मलेच्छ (मुसलमान) भगवत भजन से ही एक ही कुल के हो जाते हैं।

बहमन वैस सूद अरु खत्रीं।
डोम चमार म्लेच्छ मन सोइ॥
होइ पुनीत भगवंत भजन ते।
आपु तारि तारै कुल दोई॥[5]

संत रविदास के युग के चिन्तन की सीमा उसका ईश्वरवाद था। वे समाज की संत समस्त समस्याओं को इसी दृष्टिकोण से देखते थे और इसी को उनका समाधान मानते थे। किसी भी सामाजिक समस्या को ईश्वर की देन मानना और उसका निदान भी ईश्वर के भरोसे छोड़े देना तत्कालीन चिन्तन की सबसे बड़ी कमजोरी कहा जा सकता है। जो समस्याओं के सामाजिक कारणों से ध्यान हटाता था। उस समय के सभी विचारकों-संतों में यह प्रवृत्ति मिलती है। संत रविदास भी इससे अछूते नहीं हैं।

वेद पढ़ई पंडित बन्यो, गांठ पन्हीं तऊ चमार।
'रविदास' मानुष इक हइ, नाम धरै हइं चार॥''

मनुस्मृति में एक वर्ण को दूसरे से श्रेष्ठ माना गया। जैसे यह कहा गया कि ब्राह्मण की हर हाल में पूजा करनी चाहिए चाहे वह इसके योग्य हो चाहे न हो और शूद्र में चाहे जितने गुण हों उसको दुत्कार व प्रताड़ना का ही विधान किया है। रविदास ने इसे स्वीकार न करके गुणों के आधार पर सम्मान करने को कहा। यदि ब्राह्मण में कोई गुण नहीं है तो उसकी पूजा सिर्फ इसलिए नहीं करनी चाहिए कि वह ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ है और यदि चांडाल कहे जाने वाले व्यक्ति में गुण हैं तो उसका सम्मान करना चाहिए। आदर-मान या पूजा के अधिकारी होने का आधार जन्म न मानकर गुणों को मानना महत्त्वपूर्ण है।

'रविदास' ब्राह्मण मति पूजिए, जउ होवै गुनहीन।
पूजहिं चरन चंडाल के, जउ होवै गुन परवीन॥

***

ऊंचे कुल के कारणै, ब्राह्मन कोय न होय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, 'रविदास' कहि ब्राह्मन सोय॥

***

काम क्रोध मत लोभ तजि, जउ करइ धरम कर कार।
सोइ ब्राह्मण जानिहि, कहि 'रविदास' बिचार॥

संत रविदास के समय में वर्ण के आधार पर समाज में व्यक्ति का सम्मान तय होता था और व्यक्ति अपने कथित वर्ण के कर्त्तव्यों पर खरा उतरता है या नहीं यह भी जरूरी नहीं था। रविदास के वर्ण के कर्त्तव्यों को पुनर्परिभाषित किया। उसे इस तरह से व्याख्यायित किया जिससे कि पीड़ित व्यक्ति का पक्ष ही मजबूत होता था। मनुस्मृति के वर्ण-संबंधी कार्यों में क्षत्रीय उसी को कहा गया जो राज्य की रक्षा करता है या जो शासन करता है। लेकिन रविदास ने उसी को सच्चा क्षत्रीय कहा जो दीन-दुखी के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर सकता है। केवल भुजाओं में ताकत होने मात्र से किसी को क्षत्रीय नहीं कहा जा सकता, बल्कि उस ताकत का प्रयोग दीन-दुखियों के लिए करने वाले को ही कहा जा सकता है। जो व्यक्ति समाज के पीड़ित के लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार है वही इसका अधिकारी है।

दीन दुखी के हेत जउ, बारै अपने प्रान।
'रविदास' उह नर सूर कौं, सांचा छत्री जान॥

वैश्य के लिए मात्र व्यपार करना ही काफी नहीं है। व्यापार में तो धोखा, ठगी, बेइमानी, निजी स्वार्थ भी होता है। संत रविदास ने सबके सुख के लिए व्यापार करने वालों को ही वैश्य कहा।

'रविदास' वैस सोई जानिये, जउ सत्त कार कमाय।
पुंन कमाई सदा लहै, लौरै सर्वत्त सुखाय॥

***

सांची हाटी बैठि कर, सौदा सांचा देइ।
तकड़ी तोलै सांच की, 'रविदास' वैस है सोइ॥

मनु की वर्ण-व्यवस्था में शूद्र को सबसे नीचे का दर्ज दिया और उसे इस तरह परिभाषित किया मानो कि वह समाज पर बोझ व कलंक हो। रविदास ने शूद्र

को असत्य न कहने वाला धन कहकर प्रतिष्ठापित किया।

'रविदास' जउ अति पवित्र है, सोई सूदर जान।
जउ कुकरमी असुध जन, तिन्ह ही न सूदर मान॥

***

हरिजनन करि सेवा लागै, मन अहंकार न राखै।
'रविदास' सूद सोइ धंन है, जउ असत्त न भाखै॥

रविदास के समय में वर्णों से ही सोचा जाता था, इसलिए इस शब्दावली को तो वे नहीं छोड़ पाए, लेकिन उन्होंने वर्ण की परिभाषा जरूर बदल दी। वर्ण को जन्म से न जोड़कर उन्होंने उसे आचरण से जोड़ा। एक बात खासतौर पर देखने की यह है कि सभी वर्णों को परिभाषित करते हुए कहा कि सच्चाई को धारण किया व्यक्ति ही क्षत्री, वैश्य और शूद्र है। इसका अर्थ यह हुआ कि सच्चाई ही रविदास के लिए महत्वपूर्ण है। वे व्यक्ति को इसी आधार पर देखते थे।

वर्ण-व्यवस्था में सोपानिक क्रम है। संत रविदास ने वर्ण-व्यवस्था को जन्म के आधार पर तथा इसमें व्याप्त ऊंच-नीच को तो स्वीकार नहीं किया, लेकिन यह भी सच है कि उन्होंने वर्ण-व्यवस्था का खात्मे की ओर भी कोई संकेत नहीं किया। असल में कर्म के आधार पर वर्ण मानना व उनमें श्रेष्ठ-निम्न श्रेणी की मान्यता में मूलभूत अन्तर्विरोध यही है कि यदि कोई जन्म के आधार पर उच्च दर्जा पा ले तो कर्म के आधार पर उसे निम्न कैसे किया जाए? वर्ण-व्यवस्था के रहते समाज में भेदभाव व काम के छोटे-बड़े होने की मान्यता तो मिलती ही है। इसलिए समाज से भेदभाव व असमानता समाप्त करने के लिए वर्ण-व्यवस्था को ही समाप्त करना जरूरी है।

जाति को गलत और वर्ण-व्यवस्था को सही मानना भी उचित व तार्किक नहीं है। जाति की उत्पत्ति का वर्ण से गहरा रिश्ता है। यूं कहना भी कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि वर्ण-व्यवस्था की कोख से ही जाति का जन्म हुआ है और असल में यह वर्ण-व्यवस्था का विस्तार ही है। असल में यह भी जाति प्रथा को टिकाये रखने का ही एक ढंग है। जाति-प्रथा और वर्ण-व्यवस्था को अलग-अलग भी मान लिया जाए तो दोनों में एक बात तो समान रूप से मौजूद है और वही बात सर्वाधिक आपत्तिजनक है कि यह वर्णों में भेदभाव है। एक वर्ण को दूसरे से श्रेष्ठ समझा जाता है। यहीं से पक्षपात, भेदभाव को मान्यता मिलती है अन्ततः जिसका विस्तार घृणा में होता है।

संत रविदास की वाणी के सामाजिक प्रभाव को रेखांकित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि ''महात्मा रविदास को प्रेरणामयी वाणियों ने

सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित, आर्थिक दृष्टि से वंचित और राजनीतिक दृष्टि से तिरस्कृत सहस्र-सहस्र अकारण दंडित मनुष्यों में सिर ऊंचा करके चलने की शक्ति दी है और मनुष्यजीवन के उत्तम लक्ष्य तक पहुंचने की प्रेरणा दी है।''

संदर्भ

1. डा. रामविलास शर्मा; सामन्तवाद : वर्ण व्यवस्था और जाति बिरादरी; पृ.-51
2. नया पथ; अप्रैल-जून, 2008; पृ.-15; (एजाज अहमद का लेख-हिंदुस्तान की तामीर)
3. के. दामोदरन; भारतीय चिन्तन परम्परा; पृ.-334
4. सावित्री शोभा; हिन्दू भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.-11
5. सावित्री शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.-9

संत रविदास : भक्ति बनाम मुक्ति

'भक्ति' शब्द के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि भक्ति-भक्त और भगवत्-भगवन् शब्द 'भज्' धातु से बने हैं जिसका प्राथमिक प्रयोग बांटने, 'भाग' पाने या लेने अथवा 'भाग' यानी हिस्से का साझीदार बनने एवं ऐसे ही संबंधित अर्थों में वैदिक साहित्य में हुआ है। 'भग' रूपी धन अथवा द्रव्य के अधिपति को भगवत् कहा गया और जिसके लिए 'भग' एक भाग निर्दिष्ट हुआ वह 'भक्त'। उसका अपना विभाजन द्वारा नियत भाग उसकी 'भक्ति' कही गई। ऋग्वेद में 'भक्त', 'भक्ति' और 'भगवत्' शब्दों का प्रयोग इन्हीं अर्थों में हुआ है। यदि आगे चलकर भगवत् शब्द से एक अलौकिक सर्वशक्तिमान परम तत्त्व का बोध होने लगा तो उसके मूल में यही तथ्य है कि उस तत्त्व की कल्पना एक ऐसी शक्ति के रूप में की गई जिसका समस्त ऐश्वर्य एवं सम्पदा पर प्रभुत्व था और जो अपने उपासक को उसका एक अंश 'भक्ति', प्रदान कर उसे अपना भक्त बना सकती थी। इसी कारण 'भक्ति' और 'भक्त' के प्रारंभिक प्रयोग कर्मवाच्य में हुए हैं और ऋग्वेद की एक ऋचा में अग्नि को भक्तों और अभक्तों में भेद करने वाला कहा गया है। 'भगवत्' के अनुग्रह से 'भग' के एक अंश के प्रापक, अतिग्रहीता होने से 'भक्त' और 'भक्ति' शब्द दैवी शक्ति के साथ एक प्रकार की सहभागिता एवं घनिष्ट आत्मीयता की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए सर्वथा उपयुक्त थे और संभवत: इसी कारण धार्मिक विचारधारा में 'भक्ति' शब्द एक सशक्त प्रतीक सिद्ध हुआ।

'सामान्यज्ञान चेतना व आम बातचीत में भक्ति को ईश्वर की उपासना का ढंग, पद्धति, प्रणाली के रूप में ही समझाता है। डा. सेवा सिंह ने भक्ति को मात्र उपासना-पद्धति, प्रणाली या कर्मकाण्ड बताने वाला नहीं माना। भक्ति एक विचारधारा है और विचारधारा में कुछ मूल्य-मान्यताएं, स्थापनाएं एवं निष्कर्ष होते हैं।

विचारधारा हमेशा वर्गों की होती है, व्यक्तियों की नहीं।' व्यक्ति तो केवल उसको ग्रहण करते हैं, उसके वाहक बनते हैं, उसमें अपने अनुभव व तर्क सम्मिलित करते हैं, उसका औचित्य सिद्ध करते हैं। यह भी विवाद का विषय नहीं है कि वर्ग-विभाजित समाज में विचारधारा भी वर्गीय होती है। जब समाज में परस्पर विरोधी प्रकृति के वर्ग हैं तो किसी विचारधारा का एक वर्ग को लाभ होता है तो दूसरे वर्ग को नुक्सान।

भक्ति की विचारधारा उच्च वर्ग की विचारधारा रही है एवं विशेष समय पर उच्च वर्ग ने इसका आविष्कार किया है इस आविष्कार के पीछे ऐतिहासिक कारण भी रहे और उच्च वर्ग की जरूरतें भी। तमाम मत-मतान्तरों, उपासना-विधियों (वैष्णव, शैव, तन्त्र, आलवार आदि) में भक्ति का केन्द्रीय तत्त्व 'दासता'और 'समर्पण' अवश्य मौजूद है। ऊपरी तौर पर भाषा का, प्रतीकों का, देव-कल्पनाओं का ही अन्तर है।''[2]

प्रत्येक समाज ने समय परिवर्तन के साथ परम्परागत तौर पर प्रचलित मान्यताओं और धारणाओं को अपने समय के अनुकूल परिभाषित किया है। धर्म-दर्शन से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं तक में परिवर्तन किया है। किसी जमाने में धर्म को ही सत्य कहा जाता था, लेकिन रविदास ने इसे पलटकर सत्य को धर्म के रूप में स्थापित किया।

जिन्ह नर सत्त तियागिया, तिन्ह जीवन मिरत समान।
'रविदास' सोई जीवन भला, जहं सभ सत्त परधान।

***

'रविदास' सत्त मति छांड़िए,जौ लौं घट में प्रान।
दूसरो कोउ धरम नाहिं, जग मंहि सत्त समान॥

***

जो नर सत्य न भाषहिं, अरू करहिं बिसासघात।
तिन्हहूं सो कबहुं भुलिहिं, 'रविदास' न कीजिए बात॥

''रविदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। भक्ति भावना में उन्होंने ब्रह्म की विशेषताओं का भी वर्णन किया है। ब्रह्म के लिए उन्होंने अनेक नामों का उल्लेख किया है जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, नाथपंथी सभी प्रयोग करते रहे थे। इन नामों में प्रमुख हैं-राम, गोविंद, प्रभु, कृष्ण, माधव, हरि, रघुनाथ, अल्लाह, खुदा, मालिक इत्यादि। इनमें राम का नाम सर्वाधिक प्रिय था। कबीर की ही तरह उनके राम 'दशरथ-सुत्त' नहीं थे, वह परम-तत्त्व ब्रह्म के प्रतीक थे।

राम कहत सब जगत भुलाना, सो यह राम न होई।
करम अकरम करुणामय केशव, करता नांव सुकोई॥

दार्शनिक रूप में संत रविदास ने ब्रह्म को बादशाह, सुल्तान या सुल्तानों का सुल्तान भी कहा है। उस काल के विचारक अल्लाह के लिए सुल्तानों के सुल्तान शब्द का प्रयोग करते थे और सुल्तान को जिल-अल्लाह अर्थात अल्लाह का साया या छाया कहते थे। रैदास का सुल्तान अर्थात भगवान बुद्धिमान है, वह जन्म-मरण में नहीं आता, उसका कोई निश्चित स्वरूप नहीं है, और वह निर्बल की रक्षा करता है।

इस प्रकार रविदास ने इस्लामी और हिन्दू विचारों में सामंजस्य करने का प्रयास किया। रविदास ने वेद, उपनिषद, षड्दर्शन आदि का ज्ञान प्राप्त किया। किंतु वे उनको अपनी साधाना का आधार नहीं मानते थे। उनको पुस्तकीय ज्ञान और वेदों-शास्त्रों में कोई श्रद्धा नहीं थी, बल्कि स्वानुभूति को ही अपना संबल बनाया।[3]

संत रविदास ने कहा कि मानव-प्रेम ही ईश्वर की भक्ति है। जिस व्यक्ति के मन में मानव के प्रति प्रेम नहीं है वह चाहे जितनी मर्जी आराधना कर ले, चाहे जितनी तपस्या कर ले उसको ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती।

बन खोजइ पिय न मिलहिं, बन मंह प्रीतम नांह।
'रविदास' पिय है बसि रह्यो, मानव प्रेमंहि मांह॥

रविदास ने मानव प्रेम को महत्व दिया और उसे ईश्वर की तपस्या के नाम पर किए जाने वाले कर्मकाण्ड से अधिक महत्वपूर्ण माना। ''रविदास ने ब्राह्मण और पुरोहित वर्ग के आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्ड की आलोचना की और कहा कि ये धर्म पुस्तकों का पठन दिखावे मात्र के लिए करते हैं। रविदास तीर्थ-स्थान, पूजा आदि को प्रभुनाम के बिना बेकार समझते हैं। वे उद्घाटित करते हैं:

थोथा पंडित थोथी बानी।
थोथी हरि बिन सभै कहानी॥
थोथा मंदिर भोग विलासा।
थोथा आन देव की आसा॥

रविदास कहते हैं कि वह स्वयं तीर्थ-स्थानों का भ्रमण नहीं करते थे, न ही व्रत आदि दिखावे के लिए करते थे। उन्होंने मनुष्य की कल्पना एक बंजारे से की है जो सब जगह भ्रमण करता है किंतु नश्वर जगत में उसका कोई निवास नहीं है।''[4]

रविदास ने कहा कि ईश्वर कहीं जंगल में गुम नहीं हुआ है कि उसे ढूंढना है,

बल्कि वह तो एक भावना है जिसका संबंध मनुष्य के दिल से है। यदि वह अपने दिल की मैल साफ कर लेता है और मानव से प्रेम करने में उसे लगाता है तभी वह ऐसा कर सकता है। ईश्वर कोई वस्तु नहीं है जिसे कि मनुष्य को प्राप्त करना है। मानवों के प्रति अपने प्रेममय आचरण से उस अहसास को पा सकता है।

ब्राह्मणवाद 'शुचिता' 'पवित्रता' का ढोंग रचता है, यहीं से ब्राह्मणवाद अस्पृश्यता को वैधता प्रदान करता है। रविदास ने उसकी पोल खोलते हुए सवाल उठाया। पूजा में जिस दूध का प्रयोग करते हैं, वह पहले ही बछड़े ने झूठा कर दिया है। फूल को भंवरे ने और पानी को मछली ने झूठा कर दिया है। 'शुद्धता', 'शुचिता' के आधार पर श्रेष्ठ होने का दम भरना व इसके आधार पर समाज के कमजोर वर्गों से नफरत करने की प्रवृत्ति को रविदास ने आड़े हाथों लिया है।

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ।
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ॥
माई गोबिन्द पूजा कहा लै चरावउ।
अवरु न फूलु अनूपु न पावउ।।
मैलागर बेर्हे है बुइअंगा।
बिखु अमृतु बसहि इक संगा॥
धुप दीप नईबेदहि बासा।
कसे पूज करहि तेरी दासा॥
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ।
गुर परसादि निरंजनु पावउ।
पूजा अरचा आहि न तोरी।
कहि रविदास कवन गति मोरी॥

***

माथे तिलक हाथ जप माला,जग ठगने कूं स्वांग बनाया।
मारग छांड़ि कुमारग डहकै, सांची प्रीत बिनु राम न पाया॥

***

भाई रे भरम-भगति सुजान, जौ लौं सांच सूं नहिं पहिचान॥
भरम नाचन, भरम गायन, भरम जप, तप, दान।
भरम नाचन, भरम गावन, भरम सूं पहचान॥
भरम षट-कर्म सकल संहितां, भरम गृह, बन जान।
भरम कर कर कर्म कीये, भरम की यह बान।
भरम इन्द्री निग्रह कीयां, भरम गुफा में बास।

भरम तौ लौं जानिये, शून्यकी करै आस॥
भरम शुद्ध शरीर तो लौं, भरम नांव बिनावं।
भरम मन 'रैदास' तौ लौं, जौ लूं चाहै ठांव॥

"भक्ति में यद्यपि अद्भुत समन्वय है पर शिव और विष्णु की भक्तियों की दो धाराएं समानांतर बनी रही हैं। शिव की भक्ति स्थापना के लिए एक और 'शिव-पुराण' की रचना हुई है तो दूसरी ओर वैष्णवों ने 'विष्णु पुराण' की रचना की है। हम देख चुके हैं कि भक्ति में विष्णु का सर्वोच्च महत्त्व अन्तत्वोगत्वा स्वीकार कर लिया गया था, पर 'शिव-भक्ति' किसी स्तर पर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रही। शिव और विष्णु की प्रतिस्पर्धा की भरपूर सूचनाओं को दर्ज करते हुए भी प्रयत्न यह रहा प्रतीत होता है कि किसी न किसी प्रकार जोड़-तोड़ से शिव और विष्णु का समायोजन कर लिया जाए पर कहीं भी शिव के संदर्भ में विष्णु का वर्चस्व स्थापित नहीं किया जा सकता। यह स्थिति शायद उपासकों के दो वर्गों को सूचित करती है जो समान रूप से प्रभुत्त्वशाली बने रहे हैं, परस्पर टकराते रहे हैं, दोनों का समान अस्तित्व मानने के लिए बाध्यता बनी रही और उन्हें भक्ति में समायोजित करने की कोशिश निरन्तर बनी रही है।"[5]

संत रविदास निर्गुण को मानते हैं, वे राम की बात करते हैं, लेकिन उनका राम विष्णु का अवतार नहीं है। रविदास व अन्य संतों की भक्ति को न तो वैष्णव भक्ति में रखा जा सकता है और न ही शिव भक्ति में। मध्यकालीन संतों ने भक्ति की प्रचलित धाराओं को त्यागकर भक्ति को अलग रूप से ही परिभाषित किया, जिसमें कर्मकाण्डों पर जोर नहीं है, बल्कि सहज भक्ति पर जोर है।

संत कवियों ने भक्ति में और कर्मकांड में अन्तर किया। संत कवियों ने बाहरी दिखावों की बजाए ज्ञान पर जोर दिया था। संत रविदास ने भक्ति ने उन रूपों का खंडन किया, जिनमें बाहरी दिखावों पर जोर रहता है। भक्ति को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि भक्ति का भाव तब कहा जा सकता है, जब मनुष्य अपनी प्रशंसा या अहंकार का त्याग कर देता है। रविदास ने कहा कि नाचने, गाने, तप करने, और पैर धोने से क्या होता है ? सिर मुंडाने से क्या होता है ? तत्त्व को पहचानने में ही भक्ति हैं

भगति ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगति तब गई बड़ाई॥ टेक॥
कहा भयो नाचे अरू गाये, कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौं लौं तत्व न चीन्हे।
कहा भयो जे मूंड मुंडायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।

स्वामी दास भगत अरू सेवक, परम तत्व नहिं चीन्हे।
कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलिक ह्वै चुनि खावै॥

***

ऐसी भगति न होइ रे भाई।
राम नाम बिनु जो कुछ करिये, सो सब भरमु कहाई॥
भगति न रस दान, भगति न कथै ज्ञान।
भगति न बन में गुफा खुदाई॥
भगति न ऐसी हांसी, भगति न आसा-पासी।
भगति न यह सब कुल कान गंवाई॥
भगति न इंद्री बांधा भगति न जोग साधार।
भगति न अहार घटाई, ये सब करम कहाई॥
भगति न इंद्री साधे, भगति न वैराग बांधे।
भगति न ये सब वेद बड़ाई॥
भगति न मूड़ मुंड़ाए, भगति न माला दिखाये।
भगति न चरन धुवाए, ये सब गुनी जन कहाई॥
भगति न तौ लौं जाना, आपको आप बखाना।
जोइ जोइ करै सो सो करम बड़ाई॥
आपो गयो तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई।
राम मिल्यो आपो गुन खोयो, रिद्धि सिद्धि सबै गंवाई॥
कह रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताही के पास।
आत्म थिर भई तब सबही निधि पाई।

***

भेष लिया पै भेद न जान्यो।
अमृत लेइ विषै सो मान्यो॥
काम क्रोध में जनम गंवायो।
साधु संगति मिलि राम न गायो।
तिलक दियो पै तपनि जाई।
माला पहिरे घनेरी लाई॥
कह रैदास मरम जो पाऊं।
देव निरंजन सत कर ध्याऊं॥

संत रविदास ने धर्म के नाम पर बाहरी ढकोसलों का विरोध किया। संत रविदास ने कहा कि ईश्वर की भक्ति के लिए मंदिर या मस्जिद में जाकर सिर झुकाना जरूरी नहीं है। मंदिर या मस्जिद में जिस ईश्वर को विद्यमान समझकर सिर झुकाया जाता है वह तो सभी स्थानों पर विद्यमान है। धर्म-स्थलों का और व्यक्ति की आध्यात्मिक-धार्मिक जरूरत का कोई अनिवार्य संबंध नहीं है।

देहरा अरु मसीत मंहि, 'रविदास' न सीस नंवाय।
जिह लौ सीस निवावना, सो ठाकुर सभ थांय॥

संत रविदास आचरण में नैतिक मूल्यों को उतारने को ही भक्ति मानते थे, इसलिए उन्होंने न तो ईश्वर का कोई रूप निश्चित किया और न ही किसी विशेष प्रकार के पूजा-विधान की वकालत की। इसके विपरीत उन्होंने कहा कि जब तक मन पवित्र नहीं है, तब तक ईश्वर नहीं मिल सकता। मन की पवित्रता का अर्थ यहां अपनी बुराइयों को दूर करने से है।

देता रहे हज्जार बरस, मुल्ला चाहे अजान।
'रविदास' खुदा नंह मिल सकइ, जौ लौं मन शैतान॥

***

जे ओहु अठि सठि तीरथ न्हावै।
जे ओहु दुआदस सिला पूजावै॥
जे ओहु कूप तटा देवावै।
करै निंद सभ बिरथा जावै॥
साध का निंदकु कैसे तरै।
सरपर जानहु नरक ही परै॥
जे आहु ग्रहन करै कुलखेति।
अरपै नारी सीगार समेति॥
सगली सिंमृति स्त्रवनी सुनै।
करे निन्द कवनै नहीं गुनै॥
जे ओहु अनिक प्रसाद करावै।
भूमिदान सोभा मंडपि पावै.।
अपना बिगारि बिरांना सांढै।
करै निंद बहु जोनी हांढै॥
निन्दा कहा करहु संसारा।
निन्दक का परगटि पाहारा॥

निन्दकु सोधि साधि बीचारिआ।
कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ॥

***

राम बिन संसै गांठ न छूटै।
काम, क्रोध, मोह, मद, माया इन पांचन मिलि लूटै॥
हम बड़ कवि, कुलीन हम पंडित, हम जोगी संन्यासी।
ज्ञानी गुणी सूर हम दाता, यहु मति करै न नासी॥
पढ़ै गुनै कुछ समझि न परहीं, जो लौं भाव न दरसै।
लोहा हिरन होय धौं कैसे, जो पारस नहिं परसै।
कह 'रैदास' समै असमंजस, भूलि परै भ्रम भोरे।
मोर अधर नाम नारायण, जिवन प्राण-धन मोरे॥

''जो भी हो, अपने वर्तमान रूप में गीता में भक्ति सिद्धांत का पूर्णनिरूपण उपलब्ध होता है और भक्त विश्वरूपधारी भगवान से प्रार्थना करता है कि पिता जैसे अपने पुत्र के और प्रेमी जैसे अपनी प्रिया के अपराध सहन कर लेता है उसी प्रकार आप भी मेरे अपराध सहन कर लें (9.44)। परन्तु गीता के भक्ति-सिद्धांत में दास्य भाव ही प्रधान है। भावुक प्रेम भाव की अभिव्यक्ति नहीं है। भक्त को अपनी अकिंचनता का बोध है और वह विनम्रतापूर्वक अनुग्रह की प्रार्थना करता है और कहता है कि हे भगवन्, आपका विराट् आश्चर्यमय रूप देखकर मैं भयभीत हो उठा हूं, कृपया आप मुझे अपना देवरूप ही दिखाइए (11.45)। कहा जा सकता है कि जैसे ऋग्वेद की ऋचाओं में एक वर्गहीन समाज के आत्मीय संबंधों की झलक पाई जाती है वैसे ही वर्गबद्ध समाज में अवस्थित गीता का कवि एक अकिंचन दास-कर्मकर के रूप में भक्त की कल्पना करता है जो अपने अधिपति या स्वामी के प्रभुत्व से पूर्णतया अभिभूत है और उसकी कृपा पर अवलम्बित है। परन्तु गीता की भक्ति-कल्पना उपासक के केवल मनोभाव तक ही सीमित नहीं है। उसका प्रबल सामाजिक पक्ष है। जिसमें निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है।

अब गीता में कर्म की परिभाषा क्या है ? यहां 'कर्म' वैदिक साहित्य में वर्णित कर्मकाण्ड का अर्थ नहीं रखता, अपने वर्ण-धर्म के अनुसार निर्दिष्ट कर्मों को बिना फल की कामना किए करते रहना ही गीता का निष्काम कर्मयोग है। गीता में वर्णित भक्ति का वर्ण धर्म एक अभिन्न अंग है। स्पष्ट रूप से कहा गया है कि :

श्रेयान स्वधर्मों विगुणः परधर्मात् स्वनुनष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मों भयावहः।(3.55)

इसी बात को जोर देकर दुबारा फिर कहा गया है-

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्नुष्ठितात्।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वान्नाप्नोति किल्विषम्॥

वर्ण धर्म के प्रति इस कट्टर दृष्टि की तुलना गीता के इस कथन से की जाए जिसमें भगवान् यह कहते हैं कि जो भी भक्त चाहे जिस रूप में भी देवता की अर्चना करना चाहता है मैं उस भक्त की उस देवता के प्रति श्रद्धा अचल बनाता हूं; या यो यां तनु भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्त तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाभ्यहम्॥ (7.21) तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां एक ओर देवता के स्वरूप एवं अर्चना पद्धति आदि के मामले में पूरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता दी जा रही है वहीं सामाजिक कार्यक्षेत्र में बलपूर्वक यह कहा जा रहा है मनुष्य को स्वभाव से अर्थात् जन्म से ही नियत कर्म को ही करना चाहिए, दूसरे का वर्ण धर्म उसके व्यक्तिगत गुणों पर नहीं अपितु जन्म पर ही आधारित समझा गया है। इसी मान्यता के अनुसार गीता में शूद्रों एवं स्त्रियों को पाप योनि समझा गया। यह एक दिलचस्प सवाल है कि वैयक्तिक आधार और सामाजिक आचार के प्रति अपनाए गए रवैयों में इतनी जबर्दस्त विसंगति क्यों है। आगे चलकर हिन्दू धर्म इसी विशेषता द्वारा परिभाषित हुआ।''[6]

भक्ति के माध्यम से ब्राह्मणवादी विचारधारा ने आत्मसातीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया। भक्ति के माध्यम से विभिन्न सम्प्रदायों-मतों को अपने को आत्मसात करने या फिर उनमें मौजूद ब्राह्मणवाद विरोधी तत्वों को शिथिल कर देने तथा समुदाय विशेष की संस्कृति की स्वतंत्र पहचान समाप्त करके अपना वर्चस्व बनाए रखा है। भक्ति की विचारधारा ने निम्न वर्गों तथा जनजातियों में अपनी बैठ बनाने के लिए उनकी सामाजिक प्रथाओं, विश्वासों-मान्यताओं में ब्राह्मणवादी मान्यताएं इस तरह ठूंस दी कि उनका मूल चरित्र ही उलट दिया। 'नारायण' जैसे अवैदिक देवताओं को विष्णु के साथ जोड़कर तथा वराह व नरसिंह आदि को अवतार घोषित करके अफने खोल में समा लिया। ''शिव का ब्राह्मणवादीकरण नहीं किया जा सका, बल्कि शिव पर अनेक ब्राह्मणिक तरीके आरोपित किये गए। लगता है कि शिव के उपासकों को ब्राह्मणिक घेरे में नहीं लाया जा सका। वे वेद-विरोधी रुख बनाए रहे। यहां सांख्य था, योग था। इसलिए शिव अवतारों की श्रेणी में नहीं है। वे समता का स्थान रखते हैं, विष्णु के साथ।''[7] 'वर्णमूलक व पितृसत्तात्मक' मूल्यों का प्रसार करने के लिए भक्ति का माध्यम लिया गया। वर्णधर्म व पितृसत्तात्मकता से पीड़ित सामाजिक वर्गों की वास्तविक मुक्ति की बजाए काल्पनिक मुक्ति का सिद्धांत गढ़ा और वर्ण-धर्म का पालन ही मुक्ति का पर्याय बन गया। शूद्र के लिए द्विजों की सेवा ही मुक्ति के आदर्श मार्ग के तौर पर प्रस्तुत कर दिया।

डा. सेवा सिंह ने समाज में भक्ति की भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखा कि "प्राचीन भारत में ईसा पूर्व अर्द्धसहस्त्राब्दी के दौरान, जनजातियों की निरन्तर नई शमूलियतों की एकजुटता और लोहे के व्यापक प्रयोग से कृषि-विस्तार के फलस्वरूप उदीयमान नए कृषक वर्गों की विचारधारक जरूरतों के दबाव में भक्ति का उद्‌भव हुआ है। कालान्तर में मध्यकालीन सामंतीय रूपांतरणों के तहत क्रूर अमानवीय सोपानिक सामाजिक संबंधों को वैचारिक औचित्य प्रदान करते हुए निचले तबकों की अन्तश्चेतना को बद्धमूल बनाए रखने में भक्ति कारगर साबित हुई है।"[8] संत रविदास के साहित्य में आत्मसातीकरण व संस्कृतिकरण के संकेत स्पष्ट तौर पर दिखाई देते हैं। संत रविदास ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि वह परमात्मा की शरण में आने से श्रेष्ठ हो गए हैं। जाति से निम्न होने के बावजूद भी वे भक्ति के कारण उच्च समाज से सम्मान प्राप्त करने के अधिकारी हो गए हैं।

ऊंचे मंदर सुन्दर नारी।
राम नाम बिनु बाजी हारी॥
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओच्छा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा राम चन्द कहि रविदास चमारा।

संत रविदास ने कहा कि कबीर, नामदेव, सदना, सेना आदि निम्न जाति के होने के बावजूद भक्ति के कारण उच्च हो गए। निम्न जाति के लोगों में ऊंच-नीच श्रेणियां समाप्त करने की बजाए भक्ति द्वारा स्वयं को ऊंचा उठाने का काम किया। दलित-मुक्ति के संघर्ष की यही विडम्बना रही है कि वह श्रेष्ठ-निम्न की संरचनाओं को समाप्त करने की बजाए संघर्षशील तबकों को श्रेष्ठता की श्रेणी में आने पर ही संतुष्ट होता रहा है। इससे ब्राह्मणवादी सोच व तंत्र को ज्यों का त्यों कायम रहने में मदद मिली। इस प्रक्रिया में भक्ति ने अत्यधिक भूमिका निभाई है।

ऐसी लाल तुझ बिनु काउनु कर।
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्र धरै॥
जा की छोति जगत कउ लागै ता पर तुहीं ढरै।
नीचहु ऊंच करै मेरा गोबिन्दु काहू ते न डरै॥
नामदेव कबीरु त्रिलोचनु सधना सैन तरै।
कहि रविदास सुनहु रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै॥

***

हरि जपत तेऊजनां पदम कवलासपति
तास समतुलि नहीं आन कोऊ।

एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ
आन रे आन भरपूरि सोऊ॥
जाके भागवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ
तास की जाति आछोप छीपा।
बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ
नाम की नामना सपत दीपा॥
जाके ईदि बकरीदि कुल गऊरे बधु करहि
मानी अहि सेख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी
तिहूरे लोक परसिध कबीरा॥
जाकै कुटुंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत
फिरहि अजहु बंनारसी आस-पासा।
आचार सहित विप्र करहि डंडउति
तिन तनै रविदास दासान दासा॥

***

ऐसे जानि जपो रे जीव।
जपि ल्यो राम, न भरमो जीव॥
गनिका थी किस करमा जोग।
पर-पुरुष सो रमती भोग॥
निसि बासर दुस्करम कमाई।
राम कहत बैकुंठे जाई॥
नामदेव कहिये जाति के ओछ।
जाको जस गावै लोक॥
भगति हेत भगता के चले।
अंकमाल ले बठिल मिले॥
कोटि जग्य जो कोई करै।
राम नाम तउ न निस्तरै॥
निरगुन का गुन देखौ आई।
देही सहित कबीर सिधाई॥
मोर कुचिल जाति कुचिल में बास।
भगत चरन हरि चरन निवास।
चारिउ बेद किया खंडौति।
जन रैदास करै डंडौति॥

संत रविदास इस बात को रेखांकित करते हैं कि निम्न जाति से संबंधित होने के कारण ब्राह्मण लोग उनके सामने दण्डवत होते हैं। विप्रों का प्रधान भी उन्हें प्रणाम करता है। संत रविदास इसका श्रेय राम की शरणागति को देते हैं। ब्राह्मणवादी विचारधारा ने भक्ति के माध्यम से समाज के संघर्षशील व असंतुष्ट पीड़ितों को कुछ राहत देकर उनका शोषण जारी रखा है। इसीलिए भारतीय समाज में जाति-प्रथा जैसी घिनौनी व अमानवीय प्रथाओं का खात्मा नहीं हो पाया। जब भी जाति-व्यवस्था के समक्ष अस्तित्व की चुनौती खड़ी हुई तो उसने इस आंदोलन को अपने में समा लेने की रणनीति बनाई।

नागर जनां मेरी जाति बिखियात चमारं।
रिदै राम गोबिंद गुन सारं॥
सुरसरी सलल कृत बारूनी रेसंत जन करत नहीं पानं।
सुरा अपवित्र न ते अवर जल रे सुरसरी मिलत नहि होइ आनं॥
तर तारी अपवित्र करि मानीऐ रे जैसे कागरा करत बीचारं।
भगति भागउत लिखीऐ तिह ऊपरे पूजीऐ करि नमस्कारं॥
मेरी जाति कुटब ढांला ढोर ढोवंता नितहि बनारसी आस-पासा।
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति।
तेरे नाम सरणाई रविदास दासा॥

***

प्रभु जी संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥
गलि गलि को जल बहि आयो,
सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम,
नाम गंगोदक पायो॥
स्वांति बूंद बरसै फनि ऊपर,
सीस विषै होइ जाई।
ओही बूंद कै मोती निपजै,
संगति की अधिकाई॥
तुम चंदन हम रेंड बापुरे,
निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम,

आवै बास सुबासा ॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा,
ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु उफंच कियो है,
कह रैदास चमारा।

***

हरि बिन नहिं कोई पतित पावन, आनहिं ध्यावे रे।
हम अपूज्य, पूज्य भये हरि ते, नाम अनूपम गावै रे।
अष्टादस ब्याकरन बखानैं, तीनि काल षट जीता रे।
प्रेम भगति अंतर गति नाहीं, ता ते धनुक नीका रे।
ता ते भलो स्वान को सत्रू, हरि चरनन चित लावै रे।
मूआ मुक्त बैकुंठ बास, जिवतयहां जस पावै रे॥
हम अपराधी नीच घर जनमे, कुटुंब लोग करै हांसी रे।
कह रैदास राम जपु रसना, कटै जनम की फांसी रे॥

***

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा।
नीच रुख ते ऊंच भए हैं गंध सुगंध निवासा।।
माधउ सतसंगति सरनि तुम्हारी।
हम अउगुन तुम्ह उपकारी॥
तुम मखतूल सुपेद सपीअल हम बपुरे जस कीरा।
सतसंगति मिलि रहीऐ माधउ जैसे मधुप मखीरा॥
जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनम हमारा।
राजा राम की सेव न कीनी कहि रविदास चमारा॥

धर्मपाल मैनी ने रविदास की भक्ति के सार पर विचार करते हुए लिखा कि ''रैदास की विचारधारा में मूल स्वर ब्रह्म का है, तो उसका स्वर एक छोर पर उनकी अपनी हीनता से जुड़ा हुआ है, जिसके केन्द्र में उनकी जाति है। वास्तव में रैदास की मूल समस्या ब्रह्म के साक्षात्कार की न थी, उनकी मूल समस्या तो अपनी हीनताओं से मुक्ति पाकर आत्म-उन्नयन की थी। इसलिए वे निरन्तर ब्रह्म की चर्चा के साथ अपनी जातिगत हीनता को जोड़ देते हैं। रैदास की दृष्टि में भगवद्भक्ति ही ऐसा एक-मात्र साधन था, जिसके आधार पर वे अपने को समुन्नत अनुभव कर सकते थे। इसीलिए रैदास आत्म-उद्धार के लिए व्याकुल हैं। अपने प्रारंभिक पदों

में रैदास ईश्वर के सम्मुख आत्महीनता को स्वीकार करते हुए विनत होते हैं, इसके बाद वे ब्रह्म की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, उदारता, दीन-दलितों के प्रति सदाशयता का वर्णन करते हैं तथा अन्त में आकर वे इस बात से आत्म-उन्नयन को अनुभव करते हैं कि वेदज्ञ विप्र भी उन्हें उन्हें दण्डवत करते हैं। इस व्यक्तिगत समस्या के सहारे ही उनकी आध्यात्मिक विचारधारा अंकुरित और पल्लवित हुई है। इस प्रकार जाने-अनजाने वे उस सामाजिक समस्या पर भी विचार कर गए हैं, जिसने जाति और वर्ण के नाम पर विशाल जनसंख्या का सामाजिक और मानसिक शोषण किया है। सामाजिक दुर्व्यवहार और राजनैतिक अव्यवस्था के संत्रास को सर्वाधिक उस समय की जातियां सह रही थी। इसलिए रैदास भगवान् की भक्ति की ओर उन्मुख हुए हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में भगवान नीचों को ऊंचा बनाने वाला है, अतएव वे रैदास की भी विपत्ति को हरने में समर्थ हैं। रैदास की भक्ति इसी साध्य को पाने का साधन है। साध्य के प्रति उनकी निष्ठा भक्ति की गम्भीरता और तल्लीनता से लक्षित है।''[9]

संदर्भ

1. कुंवरपाल सिंह (सं.) ; भक्ति आंदोलन: इतिहास और संस्कृति; पृ. 56
2. जतन (त्रैमासिक)
3. सावित्री सिन्हा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.
4. सावित्री शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ. 10
5. डा. सेवा सिंह; भक्ति और जन; पृ. 100
6. कुंवरपाल सिंह (सं.); भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति; पृ. 60; (सुवीरा जायसवाल का लेख, प्राचीन काल में भक्ति का स्वरूप: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य)
7. डा. सेवा सिंह; भक्ति और जन; पृ. 110
8. बलदेव वंशी; कबीर : एक पुनर्मूल्यांकन; पृ. 229
9. धर्मपाल मैनी; रैदास; पृ. 49

संत रविदास : साधु-संत बनाम गुरु-पुरोहित

भारतीय समाज मुख्यत: ब्राह्मणवादी मान्यताओं से ही परिचालित होता रहा है। ब्राह्मणवादी मान्यताओं से टकराहट के साथ ही समाज में प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना हुई है। भारतीय धर्म साधना व दर्शन में 'मोक्ष' का विशेष महत्व है। वर्ण-व्यवस्था में चौथे वर्ण को ऊपर के तीन वर्णों को सेवा का अधिकार ही दिया था। निम्न वर्ग के पास संसार का व्यावहारिक ज्ञान होते हुए भी उसको 'पवित्र' कहे जाने वाले ज्ञान से वंचित करने का इंतजाम ही कर दिया था। समाज के इतने बड़े हिस्से को संत, साधु, गुरु व ज्ञान प्रदाता के समस्त रूपों से बहिष्कृत कर दिया था।

कथित मोक्ष-प्राप्ति में धार्मिक कहे जाने वाले अनुष्ठानों का विशेष महत्त्व भी स्वीकार किया गया है। इन धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करवाने में पुरोहित की विशेष भूमिका रही है। पुरोहित समाज को नैतिक-व्यवस्था देने वाला माना जाता रहा है। पुरोहित की कथित 'धार्मिक' व्यवस्थाएं ही निम्न वर्ग के सामाजिक-आर्थिक शोषण को वैधता प्रदान करती थीं। पुरोहित की नैतिक सत्ता को ध्वस्त किए बिना शोषण की व्यवस्था पर चोट करने की कोई भी योजना कारगर नहीं हो सकती थी। मध्यकालीन संतों ने इस पर सीधा हमला बोला। धार्मिक-कर्मकांडों को हेय बताकर उसके कार्य की नैतिक मान्यता पर प्रश्नचिह्न लगाया और उसकी जगह गुरु या उसके समकक्ष साधु नामक एक अलग संस्था को स्थापित किया।

ब्राह्मणवादी विचारधारा और संतों की समानता की विचारधारा में न केवल अन्तर था, बल्कि वे एक दूसरे के विपरीत भी खड़े थे। पुरोहित जहां बाहरी दिखावे व कर्मकांडों को अंजाम देता था वहीं संतों द्वारा परिभाषित गुरु व्यक्ति के अन्तरमन को पवित्र करने की प्रेरणा देता था। व्यक्ति का यह अन्तरमन नैतिक बोध के अलावा कुछ नहीं था।

गुरु की सत्ता को समाज में सबसे उच्च स्थान देने के लिए संतों ने उसके

कार्यों व योग्यता पर जोर दिया। उसके ज्ञान पर महत्त्व दिया, न कि उसके वर्ण या जाति पर। तत्कालीन समाज में पुरोहित का पद केवल विशेष वर्ण का व्यक्ति ही हासिल कर सकता था, लेकिन संतों का गुरु किसी के वर्ण से हो सकता था। किसी भी वर्ण से गुरु बनने का रास्ता खोलकर संतों ने निम्न वर्ग को प्रतिष्ठा प्रदान की। कल्पना कर सकते हैं कि निम्न जाति के व्यक्ति को गुरु तो किसने बनाना था, उनका कोई गुरु भी नहीं बनता था। उनको ज्ञान देने से भी सब बचते हैं।

कबीरदास ने अपना गुरु 'जबरदस्ती' बनाया था। 'किवंदंती है कि जब कबीर भजन गा गा कर उपदेश देने लगे तब उन्हें पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिये हमारे उपदेश मान्य नहीं होगे, क्योंकि लोग उन्हें 'निगुरा' कहकर चिढ़ाते रहे। लोगों का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नहीं ग्रहण किया, वह औरों को क्या उपदेश देगा। अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिन्ता हुई। कहते हैं, उस समय स्वामी रामानंद की काशी में सबसे प्रसिद्ध महात्मा थे। अतएव कबीर उन्हीं की सेवा में पहुंचे। परंतु उन्होंने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। इस पर कबीर ने एक चाल चली जो अपना काम कर गई। रामानंद जी पंचगंगा घाट पर नित्य प्रति प्रातः काल ब्रह्म मुहुर्त में स्नान करने जाया करते थे उस घाट की सीढ़ियों पर कबीर पहले से ही जाकर लेट रहे। स्वामी जी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अंधेरे में इन्हें न देखा, उनका पांव इनके सिर पर पड़ गया जिस पर स्वामी जी के मुंह से 'राम राम' निकल पड़ा। कबीर ने चट उठ कर उनके पैर पकड़ लिये और कहा कि आप राम राम का मंत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानंद जी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।'[1] स्वामी रामानंद कबीर के गुरु थे या नहीं इस पर विवाद है। लेकिन इस किवंदंती से इसका अनुमान हो जाता है कि निम्न जातियों के लिए गुरु बनाना कितना मुश्किल था और आधिकारिक ज्ञान-मीमांसा से उनको बहिष्कृत रखने का यह एक नायाब तरीका था। कबीर के गुरु धारण करने के बारे में इस किवंदंती से बारे में इस किवंदंती से बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीर की रामानंद के विचारों में कोई विशेष आस्था या विश्वास नहीं था, न ही उन्होंने उन से 'ज्ञान' प्राप्त किया, रामानंद के सम्प्रदाय के तत्त्ववाद को उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उन्होने एक तात्कालिक जरूरत के तरह रामानंद को अपन गुरु बनाया था। गुरु बनाना इनके लिए कितना पीड़ादायक रहा होगा कबीर की गुरु बनाने की प्रक्रिया से समझा जा सकता है। निम्न जाति के इन संतों को कोई 'पहुंचा हुआ' 'ख्याति प्राप्त' गुरु नहीं ही मिलता होगा और इसका रास्ता यही इन्होंने निकाला कि इन्होंने कथित परंपरागत उच्च-

गुरुओं को त्यागकर अपने संगी-साथियों को ही गुरु के तौर पर धारण किया।

संतों ने अपने भक्ति के सिद्धातों में भक्त और ईश्वर के बीच बिचोलिए की भूमिका को अस्वीकार किया है, लेकिन गुरु को उन्होंने स्थापित किया। गुरु को ईश्वर के बराबर का दर्जा दिया। गुरु के बारे में अति महिमामंडित विचार प्रस्तुत किए; इसका कारण आध्यात्मिक कम और सामाजिक अधिक नजर आता है। इनके सामने समाज को परिवर्तित करने का महती मकसद था, जिसके लिए समाज में जड़ जमाए रुढ़िवादी विचारों पर विचार करना जरूरी था और यह भी उस समय के समाज में आवश्यक शर्त की तरह ही था कि प्रवचन करने या धार्मिक विचारों पर आधिकारिक बात के लिए किसी गुरु का आधिकारिक शिष्य हो और उसने किसी से दीक्षा ली हो। शायद इसी अधिकार को प्राप्त करने के लिए ही इन्होंने जीवन में गुरु के महत्त्व को स्थापित किया और गुरु का दर्जा ईश्वर से भी ऊंचा किया। गौर करने की बात है कि व्यक्ति के जीवन में गुरु की भूमिका सीमित ही है। वह पुरोहित की तरह उसके जीवन को नियंत्रित नहीं करता, बल्कि उसमें आत्मज्ञान जगाकर उसकी भूमिका समाप्त हो जाती है।

संत रविदास ने साधु-संन्यासी को भी पुनर्परिभाषित किया। प्रचलन में साधु की ऐसी छवि थी कि वह गेरुआ वस्त्र धारण करके और तरह-तरह के स्वांग रचकर भोले भाले लोगों को ठगते थे। रविदास ने साधु के बाहरी दिखावे व आडम्बरों को छोड़कर उसके गुणों से पहचानने की बात की। साधु का काम सिर्फ ईश्वर का नाम जपना नहीं है बल्कि समाज में लगों की तकलीफों को दूर करना है। रविदास ने गुरु बनने के जन्मजात अधिकार को चुनौती दी और गुरु बनने के लिए कुछ योग्यताएं व शर्तें रखीं, जिनको पूरा करने पर ही गुरु होने का श्रेय मिल सकता है। उन्होंने गुरु के आचरण को आदर्श पुरुष के आचरण के रूप में रखा। जिस तरह से कबीर और रविदास का धर्म आचरण प्रधान था, न कि कर्मकांड-प्रधान उसी तरह से उनका गुरु भी अपने चारण की कसौटी पर परखा जाने की बात वे करते हैं, न कि सम्प्रदाय विशेष के ज्ञान में महारत हासिल करने की यो कि उच्च कुल में उत्पन होने को।

रविदास के लिए साधु कोई पराभौतिक गुणों वाला प्राणी नहीं है, उसे भी मानवीय गुणों पर खरा उतरना होता है। रविदास के लिए वही सच्चा साधु है जो सबको समान नजर से देखता है, सबका भला चाहता है और किसी के प्रति वैर भाव नहीं रखता। वह संसार को सुख प्रदान करने वाली समानता को अपनाता है। सच्चा साधु वही है जो दूसरों की पीड़ा का अहसास करता है। जो विषय वासनाओं का त्याग कर देता है और झूठ नहीं बोलता।

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ रहइ सदा निरबैर।
सुखदाई समता गहइ, सभनह मांगहि खैर॥

***

'रविदास' सोइ साधु भलो, जिह मन निर्मल होय।
राम भजहि विषया तजहि, मिथ भाषी न होय॥

***

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ जानहि पर पीर।
पर पीरा कहुं पेखि के, रहवे सदहि अधीर॥

संत रविदास ने साधु संत के गुणों में परम मानवीय गुणों का समावेश किया है। वे किसी महान व्यक्ति में इन गुणों को देखना चाहते थे। समानता उनके दर्शन व विचारों का केंद्र है। समानता चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक या किसी अन्य क्षेत्र में। 'पर पीड़ा' दूर करने में तत्पर रहने वाले को साधु कहते हैं। समानता की स्थापना और पर पीड़ा दूर करने के गुण साधु-संन्यासी को समाज सुधारक के निकट ले आते हैं। संत रविदास सच्चा साधु उसे मानते हैं जिसमें अहंकार नहीं होता और पर उपकार को ही अपना काम मानता है। वह संसार की बुराइयों में लिप्त नहीं होता।

'रविदास' सोई साधु भलो, ज पर उपकार कमाय।
जाइसइ कहहि बइसोइ करहि, आपा नांहि जताय॥

***

'रविदास' सोइ साधु भलो, जिह मन नाहिं अभिमान।
हरस सोक जानइ नहिं, सुख-दुख एक समान॥

***

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ जग मंहि लिपत न होय।
गोबिंद-सों रांचा रहइ, अरू जानहिं नहिं कोय॥

***

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ मन अभिमान न लाय।
औगुन छांड़हि गुन गहइ, सिमरइ गोबिंद राय॥

संत रविदास द्वारा बताई गई साधु संन्यासी की कसौटी आज भी प्रासंगिक है। भारतीय समाज में साधु-संन्यासी की बहुत बड़ी प्रतिष्ठा रही है। एक संस्था की तरह साधु समाज में काम करता रहा है। समय के साथ साधु नामक इस संस्था में

भी बदलाव आया है और इसके आदर्श व मूल्य इससे निकल गए हैं और मात्र ढांचा ही इसका बचा गया है। आज साधु-संन्यासी जिस तरह से ऐयाशी कर रहे हैं और अकूत दौलत अपने इर्द-गिर्द एकत्रित कर रहे हैं, उसने इस समाज में तरह-तरह की विकृतियों को जन्म दिया है। डेरे व मठ जिस तरह से अपराध, हिंसा, नशा व यौन-शोषण के अड्डे बने रहे हैं। ऐसे में संत रविदास ने साधु-संन्यासी के गुणों की जो प्रतिष्ठा की है वह कथित साधु व साधु के वेश में छुपे व्यापारी या ठग में पहचान करवाने में महती भूमिका निभाते हैं।

संत रविदास का जीवन बहुत ही संयमी व त्यागी का जीवन था, जो पराये धन पर और दूसरे की जेब पर नजर नहीं रखते थे, और स्वयं ही अपने गुजारे के लिए काम करते थे। वे दूसरों पर निर्भर नहीं थे। लेकिन आज के अधिकांश साधु-संन्यासियों का जीवन त्यागी का नहीं, बल्कि संग्रही का हो गया है और संयम के उपदेश केवल अपने भक्तों को देकर उनकी जेब से अपने ठाठ के लिए धन जुटाने का साधन बन रहे हैं।

संत रविदास व उनकी परम्परा के अन्य संतों के इस संबंध में विचारों व जीवन को आदर्श भी कहा जा सकता है। वे अपने समाज के लोगों के दुख-दर्द को दूर करने व उनमें मौजूद अज्ञानता को दूर करने के लिए हमेशा फिक्रमंद रहते थे, लेकिन अब तो साधुओं का व्यवहार एकदम विपरीत ही हो गया है।

संदर्भ

1. सं. श्यामसुंदर दास; कबीर ग्रंथावली; पृ.-21

संत रविदास : श्रम की गरिमा

श्रम मनुष्यता का आधार है, श्रमशीलता के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से अधिक विकास करने में सफल हुआ है। श्रम ने मनुष्य की शारीरिक-मानसिक संरचना को प्रभावित किया। श्रम ही मानव को सृजक के पद पर बिठाता है। श्रम के शोषण के लिए ही समाज वर्गों में विभाजित हुआ। समस्त दर्शन, धर्म, अर्थ की व्याख्याएं अन्ततः श्रम के आधार पर विभाजित श्रेणियों के तर्क विचार का काम करती हैं।

संत रविदास मेहनतवश वर्गों से ताल्लुक रखते थे, उन्होंने उनके उत्थान के लिए वैचारिक संघर्ष किया। रविदास की भक्ति, धर्म व ज्ञान की अवधारणा का आधार श्रम था। श्रमहीन 'शुद्ध-ज्ञान' व 'भक्ति-उपासना' शोषक-शासक वर्गों का विचार हो सकता है, श्रमशील वर्ग का नहीं। डा. सेवा सिंह ने लिखा कि 'शुद्ध ज्ञान का सरोकार उस परजीवी वर्ग से था जो श्रमजन्य कर्मों से मुक्त था। गीता का निष्काम कर्मयोग भी इसी विशिष्ट सुविधा सम्पन्न श्रेणी की समझ में आ सकता था, जो श्रमिकों के अतिरिक्त उत्पादन की लूट से इस प्रकार के विचारवादी दर्शन की परिकल्पना में सक्षम भी थी और अपनी इस लूट की न्यायोचितता बनाये रखने के लिए उसे इसकी जरूरत भी थी। इस ज्ञान को वायवी, सूक्ष्म, पारलौकिक और अस्तित्व रहित मोक्ष से जोड़ दिया गया। वर्ण-धर्म का पालन भी इसी मोक्ष से सम्बद्ध है। शूद्रों की इस ज्ञान तक पहुंच नहीं हो सकती, क्योंकि उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार से मूल रूप में ही वंचित कर दिया गया था।"[1]

शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था में बिना श्रम किए खाने वाले तो सम्मान पाते हैं और जो मेहनत करते हैं वे अपमानित होते हैं। जो जितनी अधिक मेहनत करता है, वह उतना ही पीड़ित होता है, उसका उतना ही अधिक शोषण होता है। दलित हमेशा समाज के निचले पायदान पर रहे, इसलिए वे उच्च वर्ण के श्रेष्ठता-दम्भ का

का शिकार रहे। संत रविदास ने इस पीड़ा से छुटकारे के लिए मेहनत करने वाले वर्ग को सम्मान का दर्जा दिया। संत रविदास का संबंध समाज के ऐसे वर्ग से था जो मेहनत करके अपना पालन करता था। अपने अनुभव से ही उन्होंने सिद्धान्तों को निर्मित किया था। बिना श्रम के खाने को उन्होंने हेय समझा। उन्होंने श्रम को ईश्वर के बराबर का दर्जा दिया।

जिहवां सों ओंकार जप, हत्थर सों कर कार।
राम मिलहिं घर आई कर, कहि 'रविदास' बिचार॥

***

नेक कमाई जउ करहि, ग्रह तजि बन नंहि जाय।
'रविदास' हमारो राम राय, ग्रह मंहि मिलिंहि आय॥

रविदास ने कहा कि जहां तक हो सके व्यक्ति को श्रम करके खाना चाहिए। श्रम की कमाई को रविदास ने नेक कमाई कहा जो कभी निष्फल नहीं जाती। रविदास ने जहां इसकी ओर संकेत किया कि समाज में बिना श्रम के खाने वाले भी हैं, वहीं इसे बड़ी हेय दृष्टि से देखा और इसे बड़ा निकृष्ट कर्म माना।

'रविदास' स्रम करि खाइहि, जौ लौं पार बसाय।
नेक कमाई जउ करइ, कबहुं न निहफल जाय॥

संत रविदास ने श्रम को ईश्वर के बराबर दर्जा दिया जिसका अर्थ है कि श्रम करने वालों को समाज में उच्च स्थान पर बिठाना। अभी तक 'पोथी', 'तप', माला अपने को ही पूजा के तौर पर लिया जाता था और इसका प्रभाव यह होता था कि शारीरिक श्रम करने वाले को हेय नजर से देखा जाता था, जो उनके सामाजिक-आर्थिक शोषण को वैधता देता था। श्रम को सुख-चैन का आधार बताया। संत रविदास ने इस सच्चाई को भांप लिया था कि जो व्यक्ति बिना श्रम के संसार के ऐश्वर्य का आनंद उठाता है वह कहीं न कहीं सुख से वंचित रहता है।

स्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन।
'रविदास' तिन्हहि संसार मंह, सदा मिलहि सुख चैन॥

***

प्रभ भगति स्रम साधना, जग मंह जिन्हहिं
तिन्हहिं जीवन सफल भयो, सत्त भाषै 'रविदास'

***

धरम करम दुइ एक हैं, समुझि लेहु मन मांहि।
धरम बिना जौ करम है, 'रविदास' न सुख तिस मांहि॥

***

'रविदास' हौं निज हत्थहिं, राखौं रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार॥

संदर्भ

1. भक्ति और जन; पृ.-2

संत रविदास : आजादी व कल्याणकारी राज्य

मानव-समाज किसी न किसी व्यवस्था को अपनाकर ही चल सकता है। जब तक समाज में समानता नहीं हो जाती, तब तक मानव समाज सुख व शांतिपूर्ण ढंग से नहीं रह सकता। समाज में समानता का खात्मा तभी से हो गया जब कुछ स्वार्थी लोग अपने ऐश्वर्य के लिए समाज के अन्य लोगों के हिस्से की सामग्री का प्रयोग करने लगे और अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए कई तरह की तिकड़में लड़ानी शुरू की। इस प्रयास में सम्पत्ति के व ज्ञान के तमाम स्रोतो पर अपना वर्चस्व स्थापित करके शक्तिशाली बनते गए। लेकिन जिन लोगों के हिस्से में सिर्फ मेहनत करना आया और उसके फलों से उनको यह कहकर वंचित कर दिया कि 'कर्म करो, फल की इच्छा न करो', उसके मन में भी समाज में बराबरी पाने की कसक रही, जो बार-बार इस वर्ग से ताल्लुक रखने वाले लोगों से आए विद्वानों और चिन्तकों ने अपनी वाणी और लेखन में प्रमुखता से उठाया।

कल्याणकारी राज्य

यद्यपि आधुनिक काल से पहले शासन की लोकतांत्रिक-प्रणाली तो नहीं थी, कि जनता की इसमें कुछ सीधा हस्तक्षेप होता, लेकिन फिर भी उसकी अपेक्षाएं तो शासकों से रही हैं, जिसे जनकवियों ने अपनी रचनाओं में कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप में व्यक्त किया है।

ऐसा चाहों राज मैं, जहां मिलै सबन कौ अन्न।
छोट बड़ो सभ सम बसैं, 'रविदास' रहैं प्रसन्न॥

असल में ये केवल रविदास के ही नहीं, बल्कि उस पूरे वर्ग के विचार हैं, जिससे संत रविदास ताल्लुक रखते थे और जिसका प्रतिनिधित्व करते थे। संत

रविदास को अपनी प्रसन्नता की उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी कि समस्त पीड़ितों-वंचितों की। असल में संत रविदास की प्रसन्नता तो सबकी प्रसन्नता में ही निहित है। राज से उनका अर्थ असल में मात्र शासन व्यवस्था से नहीं है, बल्कि समय से है, काल से है, व्यवस्था से है। भारतीय मानस इसी तरह अपनी आकांक्षा को अभिव्यक्त करता रहा है।

''रविदास एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहां ऊंच-नीच और दुख-दर्द नहीं हो, पूरा न्याय हो और सब एक-दूसरे के मित्र हों। इसको वह बेगमपुरा का नाम देते हैं।''[1]

रविदास ने बेगमपुरा नगर की कल्पना करके अपनी समाज के प्रति सोच को उजागर किया है। बेगमपुरा की कल्पना असल में एक फैटेंसी की तरह है। ऐसा नगर शायद ही दुनिया में कहीं मौजूद हो, लेकिन संत रविदास के मन व चेतना में उसकी स्पष्ट छवि है।

बेगमपुरा सहर को नाउ।
दुखु अंदोहु नहीं तिहि ठाउ।
नां तसवीस खिराजु न मालु।
खउफु न खता न तरसु जवालु॥
अब मोहि खूब वतन गह पाई।
ऊहां खैरि सदा मेरे भाई। (रहाउ)
काइमु दाइमु सदा पातिसाही।
दोम न सेम एक सो आही।
आबादानु सदा मसहूर।
ऊहां गनी बसहि मामूर॥
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै।
महरम महल न को अटकावै।
कहि रविदास खलास चमारा।
जो हम सहरी सु मीतु हमारा॥

संत रविदास ने जिस तरह के शहर की कल्पना की है, उस तरह से शायद ही किसी संत-भक्त या अन्य दार्शनिक ने की हो। वे मनुष्य को हर प्रकार के कष्ट से मुक्त देखना चाहते हैं। उनके दिमाग में एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना है, जिसमें कोई ताकतवर कमजोर न सताए, अपने बल का प्रयोग करके उसका जीना दूभर न कर दे। ताकतवर और कमजोर एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व के साथ रह सके न कि एक-दूसरे की कीमत पर।

इस तरह का समाज तो सही मायने में समाजवाद की ही कल्पना है। काफी बाद में जाकर इस विचार को मुकम्मल दर्शन का और इसे प्राप्त करने के तरीकों व शक्तियों का विचार कर पाए। संत रविदास ने समस्त समाज को सुखी रहने की स्वाभाविक वृत्ति को इसमें व्यक्त किया है, लेकिन समाज में स्वार्थी शक्तियां भेदभाव पैदा करके अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए इसे साकार नहीं होने देती।

स्वराज्य व स्वतंत्रता के हिमायती

रविदास ने मनुष्य को स्वराज्य ही रहने के लिए उचित जगह बताई है। रविदास राजनीतिक-सामाजिक गुलामी के खिलाफ थे। वे या तो स्वराज्य को रहने योग्य समझते थे या फिर मृत्यु। परतंत्रता से तो मरना ही अच्छा है:

'रविदास' मनषु करि बसन कूं, सुख कर हैं दुइ, ठांव।
इक सुख है स्वराज मंहि, दूसर मरघट गांव॥

स्वाधीनता मानव जाति का अनिवार्य गुण है। स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए मानव समाज हमेशा ही प्रयत्नशील रहा है। यद्यपि साम्राज्यवादी शक्तियां दूसरे समाजों और देशों-राष्ट्रों के संसाधनों का शोषण करने के लिए उन्हें गुलाम बनाती रही हैं, लेकिन गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए संघर्ष भी हमेशा ही होते रहे हैं। गुलामी सिर्फ राजनीतिक तौर पर किसी समाज की संप्रभुता को समाप्त करने से ही नहीं होती, बल्कि वह कई-कई रूपों में मौजूद होती है। समाज का वर्चस्वी वर्ग जब दूसरे समाज पर कब्जा कर लेता है और उसके संसाधनों को अपने विकास व ऐशो आराम के लिए प्रयोग करता है और वह आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर न रहकर उस पर निर्भर हो जाता है तो उसकी हालत भी गुलामों जैसी ही हो जाती है। संत रविदास ने अपने समाज को बड़ी गहराई से देखा और समाज में पराधीन लोगों को अमानवीय स्थितियों में जीते हुए देखा तो उन्होंने उनकी पीड़ा को समझा और अपनी कविताओं में व्यक्त किया। उन्होंने पराधीनता को पाप की संज्ञा दी और कहा कि पराधीन व्यक्ति को कोई प्रेम नहीं करता।

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
'रविदास' दास प्राधीन सों, कौन करै है प्रीत॥

***

पराधीन कौ दीन क्या, पराधीन बेदीन।
'रविदास' दास प्राधीन कौ, सबही समझै हींन॥

रविदास ने स्वाधीनता को सुखी जीवन का आधार माना है। तत्कालीन सामन्ती समाज में रविदास ने स्वाधीनता की धारणा मानवीय गरिमा के लिए जरूरी मानकर महत्त्वपूर्ण सत्य को अभिव्यक्त किया था। समाज में जितने भी सकारात्मक बदलाव हुए हैं, उनके पीछे स्वतन्त्रता की भावना का मुख्य योगदान है। समाज में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं उनके पीछे भी यही विचार काम करता रहा है। विशेष तौर पर जिन समाजों ने सामाजिक पराधीनता को झेला है वे इसके दंश को बेहतर ढंग से जानते हैं। संत रविदास ने मानव की मूलभूत आकांक्षा को वाणी देकर उसकी चाह को बढ़ावा दिया है और आजादी प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया है।

संदर्भ

1. सावित्री शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; पृ.–11

संत रविदास : जन कविता का सौंदर्य

रविदास व अन्य संतों ने अपनी रचनाओं में आम जनता के जीवन को व्यक्त किया। उनकी आकांक्षाओं को वाणी दी। इसकी कीमत उनको न केवल अपने समय में चुकानी पड़ी, बल्कि बाद की परम्परा में भी उनको साहित्य-स्रष्टा के पद से दूर ही रखा गया। हिन्दी के आलोचक-आचार्य प्रवरों ने उनकी कविताओं को प्रथमत: कविता के तौर पर स्वीकृति देने में हिचकिचाहट दिखाई। समाज में इन कवियों की मान्यता एवं प्रभाव को देखते हुए थोड़ा नाक-भौं सिकोड़कर इन्हें कवि के तौर पर स्वीकार किया भी तो फुटकल खाते में डाल दिया। इनकी कविताओं के सौन्दर्य व कला पक्ष के बारे में विचार न करके इन कवियों की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी करते हुए इनको 'अनपढ़, अक्खड़, अनगढ़' कहकर निपटा दिया गया। इन कवियों की रचनाओं की विषयवस्तु तो आचार्यों को खटकती ही थी, इनकी कविताएं भी प्रचलित काव्यशास्त्र व सौंदर्य शास्त्र को चुनौती देती थी। कविता के 'रमणीय', 'कान्तासम्मित उपदेश', 'कोमलकान्त पदावली', 'उदात्त भाषा', 'महापुरुषों के आख्यान' पर विकसित काव्यशास्त्र में ये कविताएं फिट नहीं बैठती थी और पूरे काव्यशास्त्र को ही धता बताती थी। इसीलिए आचार्यों के लिए 'श्रेयस्कर' यही था कि कविता को इससे बचाया जाए और इन्होंने कई-कई तर्क गढ़कर इनको कविता के दायरे से बाहर रखने की कोशिश की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इस संबंध में प्रकाश डालता है। उन्होंने लिखा कि 'इस शाखा की रचनाएं साहित्यिक नहीं हैं, फुटकर दोहों या पदों के रूप में है, जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग है। कबीर आदि दो-एक प्रतिभा सम्पन्न संतों को छोड़ औरों में ज्ञान-मार्ग की सुनी-सुनाई बातों का पिष्टपेषण तथा हठयोग की बातों के कुछ रूप भद्दी तुकबन्दियों में है। भक्ति-रस में मग्न करने वाली सरसता भी बहुत कम पाई जाती है। बात यह है कि पंथ

का प्रभाव शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि इसके लिए न तो इस पंथ में कोई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता, जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।'

दलित चिंतक कंवल भारती ने आचार्य जी के मंतव्य पर सही टिप्पणी की है कि 'आचार्य शुक्ल सरीखे आलोचक यह नहीं जानते कि इन्हीं दलित संतों के पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित हैं, जो काव्य के अनेक अंगों और रागों में बद्ध हैं और उनकी संगीतात्मकता इतनी सरस है कि कुमार गंधर्व जैसे संगीतकारों ने उन्हें न केवल अपने गायन का अंग बनाया, वरन् उनके आधार पर कितनी ही मधुर संगीत रचनाओं का सृजन भी किया। संत कबीर और रैदास आदि के पदों की यह रसात्मक भावधारा ही है, जो संगीतकारों को आकर्षित करती है और श्रोताओं को अलौकिक आनंद से सराबोर करती है। क्या उनके पदों की यह अंग रागबद्धता निर्धारित काव्यशास्त्र के सिद्धांतों के बिना संभव हो सकती है।'[1]

मध्यकालीन संत न तो किसी राजा के दरबार की शोभा थे और न स्वयं ही सामन्ती जीवन से ताल्लुक रखते थे। वे शास्त्रीय परम्परा के संवाहक भी नहीं थे, इसके विपरीत वे मेहनतकश वर्गों से जुड़े थे और लोक-अनुभव उनकी पूंजी थी। वे अपनी कविता के लिए लोक से ही सामग्री ग्रहण करते थे। संत कवियों ने अपने जीवन के अनुभवों व सामूहिक चेतना को अपनी रचनाओं का आधार बनाया, इसीलिए उनकी रचनाओं में न तो पौराणिक-आख्यानों के पात्रों का आदर्शीकरण है और न ही वे प्रतीकों-बिम्बों के रूप में मौजूद हैं। संतों ने लोक जीवन के बिम्बों-प्रतीकों व भाषा के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति की, जिसका अभिजात्य सौन्दर्यशास्त्र में कोई स्थान नहीं था।

अपने काम के औजारों को कविता के औजार बनाने से जो उपमाओं की विश्वसनीयता बनी है वह अनुपम है। कवि ने अपनी बात कहने के लिए उधार के शब्द और प्रतीक नहीं लिए और न ही मात्र कल्पना का सहारा लिया, बल्कि अपने जीवन की वस्तुओं को ही कविता में प्रयोग किया है।

'रविदास' हौं निज हत्थहिं, राखौं रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार॥

संत रविदास के काम करने के औजार 'रांबी', 'आर', 'बिगुचा' शायद ही इससे पहले कविता में प्रयोग हुए हों। संत रविदास ने कविता में प्रवेश किया तो उससे उनका पूरा संसार ही कविता में आ गया। कविता का एक ऐसी दुनिया से परिचय हुआ जिससे वह अभी तक अछूती थी।

भाषा के माध्यम से ही कविता आकार ग्रहण करती है। भाषा ही मानव-संबंधों का सूत्र बनती है। समाज के शोषक-शासक शक्तिशाली वर्ग भाषा के जरिये ही शोषित-शासित कमजोर वर्गों पर सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करते हैं। शक्तिशाली वर्गों के सांस्कृतिक वर्चस्व को भेदने के लिए लोक-जन भाषा हमेशा कारगर औजार रही है। मध्यकालीन संतों ने अपनी बात कहने के लिए अपनी भाषा भी विकसित की। गौर करने की बात है कि उनके मानवीय गरिमा प्राप्त करने के संघर्ष में जिन भाषाओं में अभिव्यक्ति की वही भाषाएं बाद में पूर्ण रूप में विकसित हुई।

संत रविदास की रचनाओं की भाषा जन-सामान्य की भाषा है। जो परम्परागत रूप से व्याप्त कविता की आभिजात्यता को एक झटके में एक तरफ छिटक देती है। 'संत रविदास ने अधिकांशत: हिन्दी में ही पद्य-रचना की है। उनके काव्य में पूर्वी-अवधी का समावेश अधिक है। अवधी शब्दों के अतिरिक्त प्रारम्भ से अंत तक अवधी के कारक-चिह्नों का प्रयोग भी पाया जाता है। कहीं कहीं ब्रज भाषा और खड़ी बोली की विभक्तियां और उर्दू फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।'[2]

संत रविदास के समय फारसी भाषा जन भाषा तो नहीं थी, लेकिन आम जीवन में उसका अवश्य प्रयोग होता था, इसीलिए उनकी रचनाओं में फारसी के शब्द भी मिलते हैं।

खालिक सिकस्ता मैं तेरा।
दे दीदार उमेदगार बेकरार जिब मेरा
औवल आखिर इलाह आदम फरिस्ता बन्दा
जिसकी पनाह पीर पैगम्बर मैं गरीब क्या गंदा
तू हाजरा हजूर जौक इक, अवर नहीं है दूजा
जिसके इसक आसरा नहीं क्या निवाज क्या पूजा
नालीदोज हनोज बेबखत कमीं खिजमतगार तुम्हारा
दर मांदा दर ज्वाब न पावै, कह रैदास विचारा

***

या रामा एक तूं दाना, तेरी आदि भेख ना।
तूं सुलताने सुलताना, बंदा सकिसता अजाना॥
मैं बेदियानत न जर दे, दरमंद बरखुरदार।
बेअदब बदबखत बौरा, बे अकल बदकार॥
मैं गुनहगार गरीब काफिल, कमदिला दिलतार।

तूं कादिर दरिया वजिहावन, मैं हिरसिया हुसियार॥
यह तन हस्त खस्त खराब, खातिर अंदेसा बिसियार।
रैदास दासहि बोलि साहब, देहु अब दीदार॥

संत रविदास की कविताओं में जीवन्त चित्रों व बिम्बों के दर्शन होते हैं। लोक जीवन के चित्र स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। इन बिम्बों व चित्रों के माध्यम से कविता पाठक के सामने खुलती जाती है। मनुष्य के जीवन को संत रविदास बहुत सहज ढंग से उद्‌घाटित कर देते हैं। संत रविदास के काव्य-बिम्बों में गति है, जीवन के कार्यकलाप हैं। मनुष्य यहां नाचता है, देखता, सुनता, बोलता, रोता, दौड़ता नजर आता है। जीवन की इन क्रियाओं से उनकी कविता सजीव हो उठती है। चलते-फिरते मनुष्य का आना अभिव्यक्ति को सघन बनाता है। उनकी कविता के बिम्ब स्थिर नहीं है, जो उनकी गतिमान-क्रियाशील जीवन दृष्टि की उपज हैं।

माटी का पुतरा कैसे नचतु है।
देखै, सुनै, बोलै, दौरो फिरतु है।
जब कुछ पावै तो गर्व करतु है,
गाथा गई तो रोवन लगतु है।
मन वच कर्म रस कसहि लुभाना,
विनति कया जाय कहुं सयाना।
कहि 'रैदास' बाजी जग भाई,
बाजीगर सूं मोहि प्रीति बनि आई॥

संत रविदास ने अपने जीवन की स्थितियों को कविता में ढाला है, जिससे उनकी अभिव्यक्ति विश्वसनीय बनी है। संत रविदास जूती गांठना नहीं जानते, लेकिन लोग उनसे वही करवाना चाहते हैं। अपने जीवन के यथार्थ की ठोस भूमि कविता को विश्वसनीयता का आधार प्रदान करती है।

चमरवा गांठि न जनई।
लोग गठावै पनही।
आर नहीं जिह तोपउ।
नहीं रांबी ठाउ रोपउ॥
लोग गंठि गंठि खरा बिगूचा।
हउ बिनु गांठे जाइ पहूंचा।
रविदास जपै राम नामा।
मोहि जम सिउ नाही कामा॥

***

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अंग-अंग बास समानी॥
प्रभु जी तुम बन घन हम मोरा।
जैसे चितवन चन्द चकोरा।
प्रभु जी तुम माली हम बागा।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भगति करै रैदास॥

मध्यकालीन कविता में कुछ बिम्ब व प्रतीक रूढ़ि की तरह से हैं, जिनका प्रयोग लगभग प्रत्येक कवि ने किया है। चांद और चकोर का बिम्ब उसी तरह का है। श्रृंगार रस के चितेरों ने विशेष रूप से इसका प्रयोग किया है। संत रविदास ने भी इसे अपने कविता में प्रयोग किया।

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा।
जउ तुम चन्द तउ हम भए हैं चकोरा॥

ऐसे बिम्ब उसी रचनाकार के काव्य में हो सकते हैं, जो कि लोक जीवन से गहराई में जुड़ा हो। लोक जीवन के बिम्बों से यह कविता लोक से सीधा सम्पर्क बनाने में सक्षम हुई। इनकी भाषा में न तो घुमाव है और न अमूर्तता। साफ बात को साफ तौर पर कहने वाली रविदास की भाषा जन पक्षधर कविता की प्रेरणा बन सकती है। संप्रेषण का यहां संकट नहीं है।

लोक जीवन उनकी रचनाओं में व्यक्त होता है। भक्ति की गूढ़ रहस्य को व्यक्त करने के लिए या अन्य किसी स्थिति को उद्घाटित करने के लिए वे लोक का ही सहारा लेते हैं। 'बंके बाल पाग सिर डेरी', 'थोथो जानि पछोरौ रे कोई', 'दूध त बछरै थनहु बिटारियो', 'घृत कारन दधि मथै सइआन', 'माटी को पुतरा', कूपु भरियो जैसा दादिरा, जैसी अभिव्यक्तियां लोक-जीवन को सामने रख देती हैं।

'घट अवघट डूगर घणा इकु निरगुण बलु हमार।
रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि॥
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिया जाइ रे॥
हउ बनजारो राम को सहज करउ ब्यापारु।'

संत रविदास अपने समय के कार्य-व्यापार को भी उद्घाटित कर देते हैं। बैल गाड़ी में सामान भरकर व्यापार करने के लिए लेकर जाने की वास्तविकता प्रकट हो

जाती है। और व्यापार चुंगी कर या अन्य किस्म का टैक्स लगने का ऐतिहासिक तथ्य भी सामने रखते हैं। अपने समय की सच्चाइयां उनके काव्य में जहां तहां बिखरी पड़ी हैं। जिन को जोड़कर उस समय की तस्वीर बनाई जा सकती है।

संत रविदास ने उलटबांसियों का प्रयोग करके अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया है, यद्यपि इनका अधिक प्रयोग नहीं किया गया। लेकिन जिस समाज में सीधी बात को कोई नहीं सुनता, उस समाज में इस तरह की शैली बहुत कारगर होती है। वाणी में वक्रता व चमत्कार पैदा करके पाठक-श्रोता का अपनी ओर ध्यान खींचना तथा अपने काव्य से उसे जोड़ने का यह ढंग कबीर व संत रविदास ने निकाला था। उनकी वाणी में विपरीतों के माध्यम से बात कही है, पाठक को स्वयं उसे सीधा करना पड़ता है।

संत कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को कारगर व प्रभावी बनाने के लिए काव्य-शैलियों को ईजाद किया। उन्होंने कविता मात्र कविताई के लिए नहीं की थी और न ही उनका कवि के तौर पर अपने आप को स्थापित करने का मकसद था। वह समाज को जगाने के लिए निकले थे। इसी मकसद को पूरा करने वाली शैली को अपना कर ही वे अपने मकसद में कामयाब हो सकते थे। इसीलिए कबीर व संत रविदास का काव्य पूरी तरह से संबोधनात्मक है। वे किसी को संबोधन करना चाहते हैं, जैसे कि उनके सामने कुछ श्रोता हैं और वे उनको समझा रहे हैं। बार-बार उनके काव्य में 'साधो', 'भाई रे' जैसे संबोधन मिलते हैं। यह संवाद ही उनकी कविता को जीवन्त बना देता है। उसमें एक श्रोता विद्यमान है। उनकी कविता मात्र एक कवि का या भक्त का प्रलाप बनकर नहीं रहती। जब कविता किसी खास मकसद के लिए किसी खास श्रोता वर्ग के लिए कही जाती है तो उस पर पाठक की चेतना का, उसकी समझ के स्तर का अतिरिक्त दबाव हावी हो जाता है। अपने श्रोताओं से इस तरह का संबंध रखने वाला कवि विशेष हैसियत रखने के बावजूद भी पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होता। इसीलिए संत रविदास और कबीर आदि संतों की कविताओं में ऐसी लोकचेतना के उदाहरण भरे पड़े हैं। जनता की चेतना का ख्याल रखते हुए की गई इस कविता में काफी कुछ मान्यताएं व धारणाएं भी ऐसी होंगी, जो सिर्फ जन रुचि के कारण ही कविता में आई होंगी।

संत रविदास की कविता में कबीर की तरह से अपने विरोधी पक्ष की खिल्ली नहीं उड़ाई, बल्कि एक विरोधी पक्ष को समझकर उसका प्रतिपक्ष तैयार किया है। संत रविदास ने अपने समय के पण्डों-मुल्लाओं को उस तरह से संबोधित नहीं किया, जिस तरह से कबीर ने उन्हें चुनौती दी थी। इसीलिए कबीर जब पण्डों-मुल्लाओं को संबोधित करते हैं तो वे अपने दोस्तों को संबोधित करते

हैं और उन्हें 'साधो' कहते हैं तो उनके संबोधन में एक शिक्षक की सी विनम्रता व गंभीरता आ जाती है। संत रविदास ने पण्डों-मुल्लाओं की ओर ध्यान न देकर अपने आस-पास के लोगों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा, इसलिए उनके काव्य में कबीर का सा साहस भी नजर नहीं आता और जुझारूपन भी नहीं। शायद इसी कारण कबीर के मुकाबले में संत रविदास की कविता रेडिकल किस्म के पाठकों को प्रभावित नहीं कर पाई। संत रविदास और कबीर में कोई मूल अन्तर नहीं है, न ही विचारों में और न ही मंतव्यों में। अन्तर केवल फोकस का है। कबीर पण्डों-मुल्लों को चुनौती देते हैं, लेकिन रविदास जन सामान्य को समझाते हैं, इसलिए उसमें अतिरिक्त जोश की जरूरत नहीं है।

पहिले पहरै रैन दे बनिजरिया, तैं जनम लिया संसार बे।

***

भाई रे मन सहज बंदो लोई, बिन सहज सिद्धि न होई।
लौलीन मन जो जानिये, तब कीट भृंगी होई॥
आपा पर चीन्हें नहीं रे, औरों को उपदेस।
कहां से तुम आयो रे भाई, जाहूगे किस देस॥
कहिये तो कहिये काहि कहिये, कहां कौन पतिआई।
रैदास दास अजान ह्वै करि, रह्यो सहज समाई॥

संत रविदास की कविता काव्यशास्त्र का बंधन नहीं मानती। वह लोक जीवन के बीच से अपनी अभिव्यक्ति कर रास्ता बनाती है। उनकी कविता में लोकगीत की सी मिठास मौजूद है। इस मिठास के कारण ही उनकी रचनाएं दलित-पीड़ित समाज में गाई जाती रही हैं। संत रविदास की कविताओं की भाव भूमि तो दलित-शोषित की है, उनकी कविताओं का शिल्प भी उनके निकट है, जो उनसे रिश्ता कायम करने में बाधा नहीं बना, बल्कि सकारात्मक रूप से मदद की।

संदर्भ

1. कंवल भारती; संत रैदास- एक विश्लेषण; पृ.-78
2. रामानन्द शास्त्री; संत रविदास और उनका काव्य; पृ.-91

संदर्भ ग्रंथ सूची

कंवल भारती; सन्त रैदास : एक विश्लेषण; बोधिसत्त्व प्रकाशन, रामपुर (उ.प्र.); द्वितीय संस्करण 2005

कुवंरपाल सिंह (सं.); भक्ति आंदोलनः इतिहास और संस्कृति; वाणी प्रकाशन, दिल्ली; 1995

स्वामी रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डेय; संत रविदास और उनका काव्य; रविदास आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार

धर्मपाल मैनी; रैदास; साहित्य अकादमी, दिल्ली

पृथ्वी सिंह आजाद; रविदास दर्शन; श्री गुरु रविदास संस्थान चण्डीगढ़; 1973

डा. सरनदास भनोत; रविदास वचन सुधा; लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा; 1981

सावित्री चन्द्र शोभा; हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद; नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली; प्र.सं. 2007

रफीक जकरिया; बढ़ती दूरियां :गहराती दरार; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 2003

असगर अली इंजीनियर; भारत में साम्प्रदायिकता: इतिहास और अनुभव; इतिहास बोध प्रकाशन; इलाहाबाद; 2003

डा. रामविलास शर्मा; सामान्तवाद: वर्ण व्यवस्था और जाति बिरादरी

श्यामसुन्दर दास (सं.); कबीर ग्रंथावली; प्रकाशन परिवार द्वारा प्रकाशित; लोकभारती पुस्तक विक्रेता तथा वितरक द्वारा विपरीत; इलाहाबाद; सं. 2008

त्रिनाथ मिश्र; मौलाना जलालुद्दीन रूमी; प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; प्रं सं. 2007

बलदेव वंशी (सं.); कबीर : एक पुनर्मूल्यांकन; आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा; 2006

के दामोदरन; भारतीय चिन्तन परम्परा; पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली; चौथा सं. 2001

नया पथ; अप्रैल-जून, 2008; (एजाज अहमद का लेख-हिंदुस्तान की तामीर)

पद

दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेके।
राजेंइन्द्र समसरि गृह आसन बिनु हरिभगति कहहु किह लेखै॥1॥
न बीचारिओ राजा राम को रसु।
जिह रस अन रस बीसरि जाही॥1॥ ॥रहाउ॥
जानि अजान बए हम बावर सोच असोच दिवस जाही।
इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नहीं॥ 2॥
कहीअत आन अचरीअत अन कछु समझ न परै अपर माइआ।
कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोप करहु जीअ दइआ॥3॥

दुलभ—दुलर्भ। **पुंन—पुण्य**, नेक काम। **बिरथा**—व्यर्थ। **समसरि**—सदृश, समान। **अन रस**—अन्य रस, विषय भोग आदि। **बावर**—बावला, पागल। **अचरीअत**—आचरण करते हैं।

पहिले पहरै रैन दे बनिजरिया, तैं जनम लिया संसार बे।
सेवा चुकी राम की, तेरी बालक बुद्धि गंवार बे॥1॥
बालक बुद्धि ने चेता तूं, भूला माया जाल बे।
कहा होइ पाछे पछिताये, जब पहिले न बांधी पाल बे॥ 2 ॥
बीस बरस का भया अयाना, थांभि न सक्का भाव बे।

जन रैदास कहै बनिजरिया, तैं जनम लिया संसार बे ॥ 3 ॥
दूजै पहरे रैन दे बनिजरिया, तूं निरखन चाल्यौ छांह बे।
हरि न दामोदर ध्याइया बनिजरिया, तैं लेय न सक्का नांव बे ॥ 4 ॥
नांव न लीय औगुन किया, जस जोबन दै तान बे।
अपनी पराई गिनी न काई, मंद करम कमान बे ॥ 5 ॥
साहिब लेखा लेसी तूं भरि देसी, भरि परे तुझ तांह बे।
जन रैदास कहै बनिजरिया, तू निरखन चला छाह बे ॥ 6 ॥
तीजे पहरे रैन दे बनिजरिया, तेरे ढ़िलढ़े पड़े पिय प्रान बे।
काया रवनि का करै बनिजरिया, घट भीतर बसे कुजान बे ॥ 7 ॥
एक बसै कायागढ़ भीतर, पहला जनम गंवाय बे।
अबकी बेर न सुकिरिन कीया, बहुरि न यह गढ़ पाय बे ॥ 8 ॥
कंपी देह काया गढ़ खाना, फिरि लागा पछितान बे।
जन रैदास कहैं बनिजरिया, तेरे ढ़िलढ़े पड़े प्रान बे ॥ 9 ॥
चौथे पहरे रैन दे बनजरिया, तेरी कंपन लागी देह बे।
साहिब लेखो मांगिया बनिजरिया, तेरी छाड़ि पुरानी थेह बे ॥ 10 ॥
छाड़ि पुरानी जिद्द अजाना, बालदि हांकि सबेरियां बे।
जम के आये बांधि चलाये, बारी पूरी तेरियां बे ॥ 11 ॥
पंथ अकेला बराउ हेला, किसकी देह सनेह बे।
जन रैदास कहै बनिजरिया, तेरी कंपन लागी देह बे ॥ 12 ॥

रैन—रात। **बनिजरिया**—व्यापारी, जीवात्मा से अभिप्राय है। **सेवा चूकी**—सेवा में त्रुटि हुई। **पाल**—नाव की पाल, नाव के मस्तूल के साथ बंधा हुआ कपड़ा जिसमें हवा भरने से नाव चलती है। **थांभि न सक्का** —न संभाल सका। **निरखन**—देखना, तलाश करना। **दामोदर**—कृष्ण रूप में भगवान का नाम। **जस**—यश। **साहिब**—परमात्मा। **लेसी**—लेगा। **देसी**—देगा। **ढ़िलढ़े पड़े** —शिथिल हो गये। **कुजान**—कुकर्म करने वाला जीव। **कायागढ़**—काया रूपी किला। **बालदि**—बैल। **सबेरियां**—प्रातः समय। **पूरी**—पूरी हो गई। **बराउ**—बड़ा। **हेला**—कठिन।

जो दिन आवहि सो दिन जाही

करना कुचु रहनु थिरु नाही॥

संगु चलत है हम भी चलना।

दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥1॥

किया तू सोइआ जागु इआना।

तै जीवनु जगि सचु करि जाना॥1॥ रहाउ।

जिनि जीउ दीआ सुरिजकु अंबरावै।

सब घट भीतरि हाटु चलावै॥

करि बंदिगी छाड़ि मैं मेरा।

हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥ 2॥

जनमु सिरानो पंथु न सवारा।

सांझ परी दहदिस अन्धिआरा॥

कह रविदास निदानि दिवाने।

चेतसि नाही दुनीआ फनखाने॥ 3 ॥

संगु—साथी। **गवनु**—गमन, जाना। **सिर ऊपरि**—निश्चित। **इआना**—अनजान, नादान। **रिजकु**—रोज़ी, आजीविका। **अंबरावै**—जुटाता है। **हाटु चलावै**—लेन-देन करता है। **सम्हारि**—स्मरण कर। **सबेरा**—शीघ्र। **सिरानो**—बीत गया, नष्ट हो गया। **दहदिस**—दस दिशाओं में। **निदानि** —नादान। **फनखाने**—नाशवात।

हम सरि दीनु दइआलु न तुम सरि

अब पतिआरु किया कीजै।

बचनी तोर मोर मनु मानै

जन कउ पूरनु दीजै॥ 1 ॥

हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने

कारन कवन अबोल॥ रहाउ॥

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ

इहु जनमु तुम्हारे लेखे।

कहि रविदास आस लगि जीवउ

चिर भाइओ दरसनु देखे॥ 2 ॥

सरि—सदृश, समान। **पतिआरु**—आश्वासन, प्रमाण। **हउ**—(हौं), मैं।

त्तित सिमरनु करउ नै अविलोकनो

स्त्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ।

मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ

रसन अंमृत राम नाम भाखउ॥ 1॥

मेरी प्रीति गोबिन्द सिउ जिनि घटै।

मैं तउ मोलि महंगी लई जीअ सटै॥ । ॥ रहाउ॥

साध संगति बिना भाउ नहीं ऊपजै

भाव बिनु भगति नहीं होइ तेरी।

कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ।

पैज राखउ राजा राम मेरी॥ 2॥

अविलोकनो—अवलोकन करना, देखना। **स्त्रवन**—कान। **पूरि राखउ**—भर लूं। **रसन**—रसना, जिह्वा। **जीअ सटै**—प्राणों के मोल। **ऊपजै**—उत्पन्न होना। **ऊपजै**—उत्पन्न होना। **पैज**—चेक, अनुरोध, इज्जत।

मेरी संगति पोच सोच दिनु राती।
मेरा करमु कुटिलता जनमु कुभांती॥ 1॥
राम गुसईआ जीअ के जीवना।
मोहि न बिसारहु मैं जनु तेरा॥ 1॥ रहाउ॥
मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभाई।
चरण न छाडउ सरीर कल जाई॥ 2॥
कहु रविदास परउ तेरी साभा।
बेगि मिलहु जन करि न बिलांवा॥ 3॥

पोच—अधन, तुच्छ, बुरी। **करमु**—कर्म। **कुटिलता**—बुराई। **कुभांती**—नीच जाति में। **गुसईआ**—गुसाईं, स्वामी। **न बिसारहु**—न भुलाइएगा। **सुभाई**—स्वभाव। **साभा**—शरण। **बिलांबा**—विलम्ब, देर।

घट अवघट डूगर घणा इकु निरगुण बैलु हमार।
रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि॥ 1 ॥
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिआ जाइ रे॥ 1॥ रहाउ।
हउ बनजारो राम को सहज करउ ब्यापारु।
मैं राम नाम धन लादिया बिखु लादी संसारि॥ 2॥
उर वारपार के दानीआ लिखि लेहु आल पतालु।
मोहि जम डंडु न लागई तजीले सरब जंजाल॥ 3॥
जैसा रंगु कसुंभ का तैसा इहु संसारु।
मेरे रमईए रंगु मजीठे का कहु रविदास चमार॥ 4॥

घट—घड़ा, शरीर। **अवघट**—कठिन। **डूगर**—टीला। **बनजारो**—व्यापारी। **टांडा**—खेप। **बिखु**—विषय, भोग-विलास। **वारपार**—इस छोर से छत छोर तक। **दानीया**—महसूल उगाहने वाला। **आलू पतालु**—झूठ मठ। **कसुंभ**—केसर। **रकईए**—राम। **मजीठ**—एक विशेष प्रकार की जड़ जिसे उबाल कर रंग बनता है।

कूपु भरिओ जैसा दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ।
अैसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरपारु न सूझ॥ 1 ॥
सगल भवन के नाइका इकु छिनु दरस दिखाइ जी॥ 1 ॥ रहाउ॥
मलिन भई मति माधवा तेरो गति लखी न जाई।
करहु कृपा प्रभु चूकई मैं सुमति देहु समझाइ॥ 2॥
जोगीसर पावहि नहीं तुअ गुण कथनु अपार।
प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार॥ 3 ॥

कुपू—कुआं। **दादिरा**—मेंढक। **विखिआ**—विषयों से। **आरा पारू**—तट। **सगल**—सकल। **नाइका**—स्वामी। **लखी**—देखी, समझी।

नरहरि चंचल है मति मोरी।
कैसे भगति करूं मैं तोरी॥ टेक॥
तू मोहिं देखे, हौं तोहि देखूं, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखे, तौहिं न देखूं, यह मति सब बुधि खोई ॥ 1 ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ॥ 2 ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥ 3 ॥

नरहरि—नृसिंह रूप में भगवान का नाम। **हौं**—मैं। **तोहि**—मुझे। **घट**—हृदय। **रमसि**—रमण करता है। **औगुन**—अवगुण, दोष। **कृत**—किया हुआ। **मैं-तैं**—मैं, तू अथवा अपने पराए का भाव, अलगाव का भाव। **तोरि-मोरि**—तेरी-मेरी अथवा अलगाव का भाव। **असमझि सों**—नादानी से, ना समझी से। **निस्तारा**—मोक्ष। **करुनामय**—दयालु।

अब मैं हार्यो रे भाई

थकित भयों सब हाल चाल ते, लोक न बेद बड़ाई ॥ टेक ॥

थकित भयो गायन अरु नाचन, थाकी सेवा पूजा।

काम क्रोध ते देह थकित भई कहौं कहां लौं दूजा ॥ 1 ॥

राम जनहूं न भगत कहाऊं चरन पखारूं न देवा।

जोइ जोइ करौं उलटि मोहि बांधैं, ता ते निकट न भेवा ॥ 2 ॥

पहिले ज्ञान का किया चांदना, पाछे दिया बुझाई।

सुन्न सहज मैं दोऊ त्याग, राम न कहूं दुखदाई ॥ 3 ॥

दूर बसे षट्कर्म सकल अरु दूरउ कीन्हे सेऊ।

ज्ञान ध्यान दूर दोउ कीन्हे, दूरिउ छाड़े तेऊ ॥ 4 ॥

पांचों थकित भये हैं जहं तहं, जहां तहां थिति पाई।

जा कारन मैं दौरो फिरतो, सो अब घट में आई ॥ 5 ॥

पाचों मेरी सखी सहेली, तिन निधि दई दिखाई।

अब मन फूलि भयो जग महियां, आप में उलटि समाई ॥ 6 ॥

चलत चलत मेरो निज मन थाक्यो, अब मो से चलो न जाई।

साईं सहज मिलौ सोई सनमुख, कह रैदास बड़ाई ॥ 7 ॥

भेवा—भेद, रहस्य। **षट्कर्म**—छः प्रकार का कर्म-यज्ञ करना और करवाना, वेद-शास्त्र का अध्ययन और अध्यापन तथा दान लेना और दान करना। **सेऊ**—सेवा। **पांचों**—पांचों ज्ञानेन्द्रियां। **घट**—हृदय में, अन्तरतम में। **जगमहियां**—संसार में।

आयौं हो आयौं देव तुम सरना।

जानि कृपा की जो अपना जना ॥टेक ॥

त्रिविध जेनि बास, जम को अगम त्रास,

तुम्हरे भजन बिनु भ्रमत फिरौं।

ममता अहं विषै मद मातौ

यह सुख कबहूं न दुतर तिरौं ॥ 1 ॥

तुम्हारे नांव बिसास छाड़ी है आन की आस,

संसार धरम मेरो मन न धीजै।

रैदास दास की सेवा मानि हो दैव विधि देव,

पतित पावन नाम प्रगट कीजै ॥ 2 ॥

अगम त्रास—दारुण, विकट भय। **अहं**—अहंकार। **विषै**—विषय-वासना। **दुतर**—दुस्तर, जिसे पार करना कठिन हो। **तिरौं**—तर जाऊं, पार कर जाऊं। **न धीजै**—धारण नहीं करता है। **पतित पावन**—पापियों को पवित्र करने वाला।

जौ तुम तोरो राम मैं नहिं तोरौं।

तुम से तोरि कवन से जोरौं ॥ टेक ॥

तीरथ बरत न करौं अंदेसा।

तुम्हरे चरण कमल कभरोसा ॥ 1 ॥

जहं जहं जाओं तुम्हरी पूजा।

तुम सा देव और नहिं दूजा ॥ 2 ॥

मैं अपनो मन हरि से जोर्‌यो।

हरि से जोरि सबन से तोर्‌यो ॥ 3 ॥

सबही पहर तुम्हारी आसा।

मन बच क्रम कहै रैदासा ॥ 4 ॥

तौरि—तोड़कर। **कवन से**—किस से। **जोरौं**—जोडूं। **अंदेसा**—आशंका, द्विविधा। **मन बच क्रम**—मन, वाणी और कर्म से।

नरहिर प्रगटसि ना हो प्रगटसि ना हो।

दीना नाथ दयाल नरहरि ।टेक॥

जनमेऊं तौही ते बिगरान।

अहो कछु बूझै बहुरि सयान ॥ 1 ॥

परिवारि विमुख मोहिं लागि।

कछु समुझि परत नहिं जागि ॥ 2 ॥

यह भौ बिदेस कलिकाल।

अहो मैं आइ पर्‌यो जम जाल॥ 3॥

कबहुक तोर भरोस।

जो मैं न कहूं तो मोर दोस॥ 4॥

अस कहिये तेऊ ना जान।

अहो प्रभु तुम सरबस मैं सयान॥ 5॥

सुत सेवक सदा असोच।

ठाकुर पितहिं सब सोच॥ 6॥

रैदास बिनवै कर जोरि।

अहो स्वामी तुम मोहिं न खोरि॥ 7॥

सु तु पुरबला अकरम मोर।

बलि जाऊं करौ जिन कोर॥ 8॥

प्रगटसि—प्रकट नहीं होते हो। **नरहरि**—नृसिंह रूप में भगवान का नाम। **तोहिते**—तुझ से। **बिगरान**—प्रलग हो गया हूं। **बूझे**—पूछता। **परिवारि**—परिवार, पारिवारिक जीवन। **विमुख लागि**—अच्छा नहीं लगता। **जागि**—जग। **भौ**—भव, संसार। **सरबस**—सब। **खोरि**—खोट, दोष। **पुरबल**—पूर्व जन्म का। **अकरम**—दुष्कर्म। **जिन**—मत। **कौर**—कसर, कमी।

बापुरो संत रैदास कहै रे।

ज्ञान बिचार चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे ॥ टेक ॥

पाती तोड़े, पूजि रचावै, तारन तरन कहै रे।

मूरति माहिं बसै परमेसुर, तौ पानी माहिं तिरै रे ॥ 1 ॥

त्रिबिध संसार कौन बिधि तिरबौ, जे दृढ़ नाव न गहै रे।

नाव छाड़ि रे डूंगे बसे, तौ दूना दुःख सहै रे ॥ 2 ॥

गुरु को सबद अरु सुरित कुदाली, खोदत कोई रहै रे।

राम कहहुके न बाढ़ै आपो, सोने कूल बहै रे ॥ 3 ॥

झूठी माया जग डहकाया, तौ तिन ताप दहै रे।

कह रैदास राम जपि रसना, काहु के संग न रहै रे ॥ 4 ॥

बापुरो—दीन। **सरनि**—शरण। **तारन तरन**—तारने वाला और तरने वाला। **तिरबौ**—तरेगा। **दृढ़**—मज़बूत। **गहै**—ग्रहण करे। **डूंगा**—छोटी नाव। **कहहुके**—कहकर। **न बाढ़ै**—नहीं बढ़ता। **आपा**—अहंकार। **सोनेकूल**—शून्य रूपी तालाब, अथवा तट। **डहकाया**—धोखा खाया। **तिन ताप**—तीन प्रकार के दुःख—आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक।

दरसन दीजै राम दरसन दीजै।

दरसन दीजै बिलंब न कीजै ॥ टेक ॥

दरसन तोरा जीवन मोरा।

बिन दरसन क्यों जिवै चकोरा ॥ 1 ॥

माधो सतगुरु सब जग चेला।

अब के बिछुरे मिलन दुहेला ॥ 2 ॥

धन जोबन की झूठी आसा।

सत सत भाषै जन रैदासा ॥ 3 ॥

बिलंब—देर। **दुहेला**—कठिन। **सतसत**—सत्य। **भाषै**—कहता है।

केहि विधि अब सूमिरौं रे, अति दुर्लभ दीनदयाल।
मैं गहा बिषई अधिक आतुर, कामना की झाल ॥ टेक॥
कहा बाहर डिंभ कीये, हरि कनक कसौटी हार।
बाहर भीतर साखि तूं, मैं कियौ ससौ अंधियार ॥ 1 ॥
कहा भयो बहु पाखंड कीये, हरि हृदय सपने न जान।
जो दारा बिभिचारनी, मुख पतिबरत जिय आन ॥ 2 ॥
मैं हृदय हारि बैठ्यों हरी, मो पें सर्‌यो न एको काज।
भाव भगति रैदास दे, प्रतिपाल करि मोहिं आज ॥ 3 ॥

गहा—गहन, गंभीर। **विषई**—विषयी, भोग विलास में लिप्त। **झाल**—उत्कट इच्छा। **डिंभ**—पाखंड। **कनक**—सोना। **कसौटी हार**—पारखी। **साखी**—साक्षी। **ससौ**—शंका। **अंधियार**—अंधकार, अज्ञान। **मैं कियो ससौ अंधियार**—मैंने अज्ञान से ही संशय उत्पन्न कर लिया है। **दारा**—स्त्री। **बिभिचारनी**—भ्रष्ट चरित्र वाली। **मुख पतिबरत**—मुख से पतिव्रता होने का दंभ भरने वाली। **जिय आन**—हृदय में किसी अन्य पुरुष में अनुरक्त। **न सर्‌यो**—नहीं हुआ। **प्रतिपाल करि**—रक्षा करके।

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊं। टेक।
गुरू की सांटि ज्ञान का अच्छर।
बिसरै तो सहज समाधि लगाऊं ॥ 1 ॥
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी।
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊं ॥ 2 ॥
येहि बिधि मुक्त भये सनकादिक।
हृदय बिचार प्रकास दिखाऊं ॥ 3 ॥
कागद कंवल मति मसि करि निर्मल।

बिन रसना निसदिन गुन गाऊं ॥ 4 ॥
कह रैदास राम भजु भाई।
संत साखि दे बहुरि न आऊं ॥ 5 ॥

चटसाल—पाठशाला। **साटि**--छड़ी। **अच्छर**—अक्षर। **सहज समाधि**—तत्वानुभूति को। **पाटी**—तख्ती। **सुरति**—तत्वानुभूति की स्मृति। **ररौ ममौ**—रकार और मकार-इन दो अक्षरों से 'राम' बनता है। **आंक**—अंक। **कागद कंवल**—हृदय-कमल रूपी कागज़। **मति-मंसि**—बुद्धि रूपी स्याही। **साखि**—साक्षी। **बहुरि**—फिर, दूसरी बार।

गोबिंदे भवजल ब्याधि अपारा।
ता में सूझे वार न पारा ॥ टेक ॥
अगम घर दूर उर तट, बोलि भरोस न देहू।
तेरी भगति अरोहन संत अरोहन, मोहि चढ़ाइ न लेहू ॥ 1 ॥
लोह की नाव पखान बोझी, सुकिरित भाव बिहीना।
लोभ तरंग मोह भयो काला, मीन भयो मन लीना ॥ 2 ॥
दीनानाथ सुनहु मम बिनती, कवने हेत बिलंब करीजै।
रैदास दास संत चरनन, मोहिं अब अवलंबन दीजै ॥ 3 ॥

भवजल—भवसागर, संसार। **ब्याधि**—रोग। **अगम घर**—अगम्य परमात्मा का निवास स्थान। **उर तट**—दूसरे तट पर। **अरोहन**—आरोहण, चढ़ना, सीढ़ी। **पखान**—पाषाण, पत्थर। **बोझी**—बोझिल, भारी। **सुकिरित**—सुकृत, पुण्य। **मीन भयो**—मछली के समान चंचल। **बिलंब**—देर। **अवलंबन**—आश्रय, सहारा।

तेरे देव कमलापति सरन आया।
मुझ जनम संदेह भ्रम छेदि माया ॥ टेक ॥

अति संसार अपार भवसागर,
जा में जनम मरना संदेह भारी।
काम भ्रम क्रोध भ्रम लोभ भ्रम मोह भ्रम,
अनत भ्रम छेदि मम करसि यारी ॥ 1 ॥
पंच संगी मिलि पीड़ियो प्रान यों,
जाय न सक्यो बैराग भागा।
पुत्र बरग कुल बंधु ते भारजा,
भरबै दसो दिस सिर काल लागा ॥ 2 ॥
भगति चितऊं तो मोह दुख ब्यापही,
मोह चितऊं तो मेरी भगति जाई।
उभय संदेह मोहिं रैन दिन ब्यापही,
दीनदाता करूं कवन उपाई ॥ 3 ॥
चपल चेतो नहीं बहुत दुख देखियो,
काम बस मोहिहो करम फंदा।
सक्ति संबंध किया ज्ञान पद हरि लियो,
हृदय बिस्वरूप तजि भयो अंधा ॥ 4 ॥
परम प्रकास अबिनासी अघमोचना,
निरखि निज रूप बिसराम पाया।
बंदत रैदास बैराग पद चिंतना,
जपौ जगदीस गोबिंद राया ॥ 5 ॥

कमलापति—भगवान विष्णु, परमात्मा। **अनत**—अन्यत्र। **छेदि**—दूर करके। **यारी**—मित्रता। **पंच संगी**—पांच कर्मेन्द्रियां। **भारजा**—भार्या, पत्नी। **कवन**—कौन। **बिश्वरूप**—विश्वरूप, परमात्मा। **अघमोचन**—पापों का नाश करने वाला। **बिसराम**—विश्राम, सुख।

जब राम नाम कहि गावैगा।

तब भेद अभेद समावैगा ॥ टेक ॥

जो सुख है इहि रस के परसे।

सो सुख का कहि गावैगा ॥ 1 ॥

गुरु परसाद भई अनुभौ मति।

विष अमृत सम धावैगा ॥ 2 ॥

कह रैदास मेटि आपा पर।

तब वा ठौरहि पावैगा ॥ 3 ॥

भेद—अपने पराये का भेद, द्वैतभाव। **अभेद**—अद्वैत भाव। **भेद अभेद समावैगा**— द्वैतभाव अद्वैतभाव। **इहि रस**—तत्वानुभूति का आनंद। **परसे**—स्पर्श करने पर। **अनुभौ**—अनुभव, तत्वानुभूति। **आपा पर**—अपने पराये का भाव।

जे ओहु अठि सठि तीरथ न्हावै।

जे ओहु दुआदस सिला पूजावै ॥

जे ओहु कूप तटा देवावै।

करै निंद सभ बिरथा जावै ॥ 1 ॥

साध का निंदकु कैसे तरै।

सरपर जानहु नरक ही परै ॥ 1 ॥रहाउ ॥

जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति।

अरपै नारी सीगार समेति ॥

सगली सिंमृति स्रवनी सुनै।

करे निंद कवने नहीं गुनै ॥ 2 ॥

जे ओहु अनिक प्रसाद करावै।

भूमिदान सोभा मंडपि पावै ॥

अपना बिगारि बिरांना सांढ़ै।

करै निंद बहु जोनी हांढ़ै ॥ 3 ॥

निंदा कहा करहु संसारा।

निंदक का परगटि पाहारा॥

निंदकु सोधि साधि बीचारिआ।

कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ ॥ 4 ॥

ओहु—वह। **दुआदस**—बारह। **सिला**—शिला, मूर्ति। **कूप**—कुआं। **तटा**—तड़ाग, तालाब। **देवावै**—दिलवाये। **सरपर**—निश्चय ही। **सीगार**—शृंगार। **सगली**—समस्त। **कवनै नहीं गुनै**—कुछ भी लाभ नहीं। **अनिक**—अनेक। **बहु जोनी हांढ़ै**—अनेक योनियों में भटकता फिरता है। **पाहारा**—प्रहार, अर्थात निंदक द्वारा किया गया प्रहार अवश्य प्रकट हो जाता है, उसका भांडा फूट जाता है।

ऊचे मंदर साल रसोई।

एक धरि फुनि रहतु न होई ॥ 1 ॥

इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी।

जाल गइओ घासु रलिगइओ माटी ॥ 1 ॥रहाउ॥

भाई बंध कुटंब सहेरा।

ओइ भी लागे काढु सवेरा ॥ 2 ॥

घर की नारि उरहि तन लागी।

उह तउ भूतु भूतु करि भागी ॥ 3 ॥

कह रविदास सभै जगु लूटिआ।

हम तउ एक राम कहि छूटिआ ॥ 4 ॥

साल—शालि, चावल। **फुनि**—पुनः, फिर। **रलिगइओ**—मिल गया। **सहेरा**—सहेला, मित्र। **ओइ**—वही। **उरहि**—हृदय से। **उह**—वह।

जल की भीति पवन का थंभा रकत बूंद का गारा।
हाड़ मांस नाड़ी को पिंजरु पंखी बसै बिचारा ॥ 1 ॥
प्रानी किआ मेरा किआ तेरा।
जैसे तरवर पंखि बसेरा ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
राखहु कंध उसारहु नीवां।
साढ़े तीनि हाथ तेरी सीवां ॥ 2 ॥
बंके बाल पाग सिर डेरी।
इहु तनु होइगो भसम की ढेरी ॥ 3 ॥
ऊंचे मंदर सुंदर नारी।
राम नाम बिनु बाजी हारी ॥ 4 ॥
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओच्छा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा राम चंद कहि रविदास चमारा ॥ 5 ॥

भीति—दीवार। **थंभा**—स्तंभ, खंभा। **पिंजरु**—शरीर। **पंखी**—पक्षी। **कंध**—दीवार। **उसारहु**—उठाते हो। **नीवां**—नींव। **सीवां**—सीमा। **बंके**—बांके। **डेरी**—टेढ़ी। **पांति**—कुल।

मृग मीन भृंग पतंग कुंचर एक दोख बिनास।
पंच दोख असाध जा महि ता की केतक आस ॥ 1 ॥
माधो अबिदिआ हित कीन।
बिबेक दीप मलीन ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
तृगद जोनि अचेत संभव पुन पाप असोच।
मानुखा अवतार दुलभ तिही संगति पोच ॥ 2 ॥
जीअ जंत जहा जहा लगु करम के बसि जाइ।
काल फास अबध लागे कछु न चलै उपाइ ॥ 3 ॥

रविदास दास उदास तजु भ्रमु तपन तपु गुर गिआन।

भगत जन भै हरन परमानंद करहु निदान ॥ 4 ॥

भृंग—भौरा। **कुंचर**—हाथी। **जा महि**—जिस में। **तृभद जोनि**—तिर्यक योनि, पशु तथा कीड़े मकोड़े की योनि। **पोच**—नीच।

कहु मन राम नाम संभारि।

माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि ॥ टेक ॥

देखि धौं इहां कौन तेरो, सगा सुता नहिं नारि।

तोरि उतंग सब दूरि करि हैं, देहिंगे तन जारि ॥ 1 ॥

प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच विचारी।

बहुरि येहि कलिकाल माहीं, जीति भावै हारि ॥ 2 ॥

यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रति हारि।

कह रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारी ॥ 3 ॥

संभारि—स्मरण कर। **कर झारि**—हाथ झाड़ कर, खाली हाथ। **धौं**—तो, भला। **उतंग**—संबंध। **जारि देहिंगे**—जला देंगे। **बहुरि**—फिर। **भावै**—चाहे, अथवा। **थोथरी**—निस्सार, खोखली। **दिस**—दिशा में। **भगति-हारि**—अपना सर्वस्व भक्ति की दिशा में लगा दे।

जग में बेद बैद मानी जै।

इनमें और अकथ कछु औरे,

कहो कौन परिकीजै ॥ टेक ॥

भौजल ब्याधि असाधि प्रबल अति,

परम पंथ न गहीजै ॥ 1 ॥

पढ़े-गुने कछु समुझि न परई,

अनुभव पद न लहीजै ॥ 2 ॥

चखबिहीन करतारि चलतु हैं,

तिनहि न अस भुज दीजै ॥ 3 ॥

कह रैदास विवेक तत्त बिनु,

सब मिलि नरक परीजै ॥ 4 ॥

बेद—यहां कर्मकांड से अभिप्राय है। **बैद**—वैद्य। **अकथ**—अनिर्वचनीय। **परिकीजै**—विश्वास करे। **भौजल**—भवसागर। **वयाधि**—रोग। **असाधि**—असाध्य। **परम पंथ**—सर्वोत्तम मार्ग। **गहीजै**—ग्रहण करे। **पढ़े-गुने**—केवल पढ़ने एवं रटने मात्र से। **लहीजै**—प्राप्त करे। **चखबिहीन**—अंधा। **अस भुज**—ऐसी भुजा, ऐसा आश्रय। **परीजै**—पड़ेंगे।

ऐसी लाल तुझ बिनु काउनु करै।

गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्र धरै ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

जा की छोति जगत कउ लागै ता पर तुहीं ढरै ।

नीचहु ऊंच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै ॥ 1 ॥

नामदेव कबीरु त्रिलोचनु सधना सैन तरै।

कहि रविदासु सुनहु रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै ॥ 2 ॥

गरीब निवाजु—दीनों पर दया करने वाला। **छोति**—छूत। **ढरै**—दया करते हो।

सुख सागरु सुततरु चिंतामनि कामधेनु बसि जा के।

चारि पदारथ असट दसा सिधि नव निधि करतल ताके ॥ 1 ॥

हरि हरि हरि न जपहि रसना।

अवर सभ तिआगी बचन रचना ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

नाना खिआन पुरान बेद विधि चउतीस अखर मांही।
बिआस बिचारी कहिओ परमारथु राम नाम सरि नाही ॥ 2 ॥
सहज समाधि उपाधि रहत फुनि बड़ै भागि लिव लागी।
कहि रविदास प्रगासु रिदै धरि जनम मरन भै भागी ॥ 3 ॥

सुरतरु—कल्प वृक्ष। **चिंतामनि**—विशेष प्रकार की कल्पित मणि जिसमें जो मांगो वह देने की सामर्थ्य मानी जाती है। **कामधेनु**—स्वर्ग की गाय, जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली मानी जाती है। **चारिपदारथ**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। **असट सिद्धि**—योग सिद्धि से प्राप्त होने वाली आठ अलौकिक शक्तियां—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्य और वशित्व। **नव निधि**—कुबेर की पद्म, महापदुम शंख आदि नौ निधियां। **खिआन**—आख्यान, कथाएं, प्रसंग। **चउतीस अखर**—ओउम् तथा क से ह तक के अक्षर। **बिआस**—प्रसिद्ध ऋषि व्यास। **सरि**—सदृश, समान। **फुनि**—पुनः, फिर। **लिव**—प्रभु-प्रेम।

पावन जस माधो तेरा, तुम दारुन अधमोचन मेरा। टेक।
कीरति तेरी पाप बिनासे, लोक बेद यों गावै।
जौं हम पाप करत नहिं भूधर, तौ तूं कहा नसावै ॥ 1 ॥
जब लग अंक पंक नहि परसै, तौ जल कहा पखारै।
मन मलीन विषया रस लंपट, तौ हरि नाम संभारै ॥ 2 ॥
जो हम बिमल हृदय चि अंतर, दोष कौन पर धरि हौ।
कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौ, अबंध मुक्त का करिहौ ॥ 3 ॥

पावन—पवित्र। **दारुन अधमोचन**—घोर पापों का नाश करने वाले। **कीरति**—कीर्ति, यश। **जौ**—यदि। **भूधर**—पर्वत जैसा, घोर। **कहा**—क्या, किस। **नसावै**—दूर करोगे, नष्ट करोगे। **अंक**—दामन। **पंक**—कीचड़। **परसै**—स्पर्श करे। **पखारै**—धोओगे। **अबंध**—बन्धन रहित, मुक्त।

हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपति
तास समतलि नहीं आन कोऊ।
एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ
आन रे आन भरपूरि सोऊ॥ रहाउ॥
जाके भागवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ
तास की जाति आछोप छीपा।
बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ
नाम की नामना सपत दीपा॥1॥
जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊरे बधु करहि
मानी अहि सेख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी
तिहूरे लोक परसिध कबीरा॥ 2॥
जाकै कुटुंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत
फिरहि अजहु बंनारसी आस-पासा।
आचार सहित विप्र करहि डंडउति
तिन तनै रविदास दासान दासा॥ 3॥

कवलासपति —कैलाशपति, भगवान शंकर। **बिसथरिओ**—विस्तृत हो गया, फैल गया। **आछोप**—अछूत। **बिआस**—व्यास ऋषि। **सनक**—एक ऋषि का नाम। **नामना**—महिमा। **सपतदीप**—सप्त द्वीपों में, समस्त विश्व में। **बकरीदि**—ईद। **पूत ऐसी सरी** —पुत्र ने ऐसी की। **परसिद**—प्रसिद्ध। **ढेढ**—ढेढ़ (चमार) जाति। **डंडउति**—नमस्कार।

तुझहि सुझंता कछ नाहि। एहिरावा देखे ऊभि जाहि॥
गरबलती का नाही ठाउ। तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ॥ 1॥
तू काइं गरबहि बावली।

जैसे भादउ खूंब राजु तू तिसते खरी उतावली॥ । । रहाउ ॥

जैसे कुरंक नहीं पाइओ भेदू। तीन सुगंध ढूढे प्रदेसु॥

अपतन का जो करे बीचारु। तिसू नहीं जम कंकरु करे खुआरु॥ 2 ॥

पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु। ठाकरु लेखा मंगनहारु॥

फेड़े का दुखु सहै जीउ। पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ॥ 3॥

साधू की जउ लेहि ओट। तेरे मिटहिं पाप सभ कोटि कोटि॥

कहै रविदासु जो जपै नामु। तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु॥ 4॥

सुझंता —सूझता। **पहिरावा**—वेष। **ऊभि जाहि**—गर्व करता है। **गरबवती**—अहंकारी। **गरदनि**—कण्ठ, गले में पहनने का आभूषण। **काउ**—कोइ, (मृत्यु रूपी) कौआ। **लवै**—प्रेम करें, लक रहा है। **काई**—क्यों। **खूंब**—खुंभ, एक पौधा। **राजु**—रहती है। **तिसते**—तृष्णा से। **कुरंक**—मृग। **अपतन**—अपना शरीर। **जम कंकरु**—यमदूत। **खुआरु**— ज़लील, अपमानित। **मंगनहारु**—मांगने वाला। **फेड़े का**—फोकट का व्यर्थ ही, किये हुए कर्म का। **ओट**—शरण।

पड़ीए गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ अनभऊ भाउ न दरसै।

लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसै॥ 1 ॥

देव संसै गांठि न छूटै।

काम क्रोध माइआ मद मतसर इन पंचहू मिलि लूटै॥ 1 ॥ रहाउ॥

हम बड़ कबि कुलीन हम पंडित हम जोगी संनिआसी।

गिआनी गुनी सूर हम दाते इह बुधि कबहि न नासी॥ 2 ॥

कहू रविदास सभै नहीं समझसि भूलि परे जैसे बउरे।

मोहि अधारु नामु नाराइन जीवन प्रान धन मोरे॥ 3॥

अनभउ भाउ—आत्मानुभूति का भाव। **कंचन हिरन**—खरा सोना। **परस**—छुए, स्पर्श करें। **मतसर**—ईर्ष्या। **बउरे**—बावला, पागल।

मुकंद मुकंद जपहु संसार।

बिनु मुकंदु तनु होई अउहार॥

सइ मुकंदु मुक्ति का दाता।

सोई मुकंदु हमरा पित माता।

जीवत मुकंदे मरत मुकंदे।

ताके सेवक कउ सदा अनंदे॥ 1 ॥ रहाउ॥

मुकंद मुकंद मसतकि नीसानं॥

सेव मुकंद मसतकि नीसानं॥

सेव मुकंद करै बैरागी।

सोई मुकंदु करै उपकारु।

हमरा कहा करै ससारु॥

मेटी जाति हुए दरबारी।

तू ही मुकंद जोग जुगतारि॥ 3 ॥

उपजिओ गिआनु हुआ परगास।

करि किरपा लीने कीट दास॥

कहू रविदास अब तृसना चूकी।

जपि मुकंद सेवा ताहू की॥ 4 ॥

अउहार —नष्ट। **मसतिक नीसानं**—माथे पर निशान पड़ने तक। **लाधी**—प्राप्ति। **सोई मुकंदु दुरबल धनु लाधी**—वहो भगवान् निर्धन की सर्वोत्तम अर्थ प्राप्ति है, भगवान निर्धन का धन है। **दरबारी**—दरबार के सदस्य, भक्त। **उपजिओ**—उत्पन्न हुआ। **परगास**—प्रकाश। **कीट दास**—कीड़े के समान दीन, भक्त अथवा क्रीत दास।

चमरटा गांठि न जनई।

लोगु गठावै पनही॥ 1 ॥ रहाउ॥

आर नहीं जिह तोपउ

नहीं रांबी ठाउ रोपउ॥ 1 ॥

लोग गंठि गीठे खरा बिगूचा।

हउ बिनु गांठे जाइ पहूंचा॥ 2 ॥

रविदास जपै राम नामा।

मोहि जम सिउ नाही कामा॥ 3 ॥

चमरटा —चमड़ा। **पनही**—जूता। **आर**—मोचियों का एक औज़ार। **रांबी**—मोचियों का एक औजार। **तोपउ**—टांका लगाऊं, सीऊं। **रोपउ**—लगाना, बैठाना। **खरा**—खड़ा। **बिगूचा**—असमंजस में पड़े हुए, भ्रम में पड़े हुए। **हउ**—(हौं) **मैं**। **बिनु**—बिना ही। **जाई पहुंचा**—पहुंच गया हूं।

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे।

हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे॥ ॥। रहाउ॥

हरि के नाम कबीर उजागर।

जनम जनम के काटे कागर॥ । ॥

निमत नामदेउ दूधु पीआइआ।

तउ जग जनम संकट नहीं आइआ॥ 2 ॥

जन रविदास राम रंगि राता।

इउ गुर परसादि नरक नहीं जाता॥ 3 ॥

निसतरि तरे—मुक्ति प्राप्त कर गए। **कागर**—कागज़, (पापों के) दस्तावेज। **निमत**—निमित।

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार।

तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार॥ 1 ॥।

पारू कैसे पाइबो रे॥ मोसउ कोऊ न कहै समझाइ॥

जा ते आवागवनु बिलाइ॥ ॥। रहाउ॥

बहु विधि धरम निरुपीऐ करता दीसै सभ लोइ।

कवन करम ते छूटीऐ जिह साधे सभ सिधि होइ॥ 2 ॥

करम अकरम बीचारीऐ संका सुनि बेद पुरान।

संसा सद हिरदै बसै कउनु हिरै अभिमानु॥ 3 ॥

बाहरु उदकि पखारिएं घट भीतरि विविध बिकार।

सुध कवन पर होइबो सुच कुंचर बिधि बिउहार॥ 4 ॥

रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार।

पारस मानो ताबो छुए कनक होत नहीं बार॥ 5 ॥

परम पारस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट।

उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट॥ 6 ॥

भगति जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटि बिकार।

सोई रसि बसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार॥ 7 ॥

अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फांस।

प्रेम भगति नहीं उपजै ता ते रविदास उदास॥ 8 ॥

जगी —यज्ञ। **दिड़े**—दृढ़। **आवागवनु**—आवागमन। **बिलाई**—नष्ट हो, समाप्त हो। **लोइ**—लोग। **हिरै**—दूर करे। **उदकि**—पानी। **घट**—शरीर। **पखारिऐ** —धोएं। **कुंचर**—हाथी। **रवि प्रगास**—सूर्य का प्रकाश। **रजनी**—रात्रि। **उनमन**—सांसारिक विषयों से उदासीन। **बजर कपाट**—मजबूत दरवाजा। **अनिक**—अनेक। **निग्रह**—रोकना, मन-इंद्रियों को वश में करना। **टारी न टरै** —हटाने से नहीं हटती। **फांस**—फन्दा।

खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदे नाहिं।
चरनारबिन्द न कथा भावै सुपच तुलि समानि॥1॥
रे चित चेति चेत अचेत॥ काहे न बालमीकहि देख॥
किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ राम भगति बिसेख ॥ रहाउ॥
सुआन सत्रु जातु सभते कृस्न लावै हैतु।
लोग बपुरा किया सराहै तीनि लोक प्रवेस॥ 2 ॥
अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पास।
ऐसे दूरमति निसतरे तू किउ न तरहिं रविदास॥ 3 ॥

खटु करम —खोट कर्म, अथवा षट्कर्म, यज्ञ करना और करवाना, पढ़ना और पढ़ाना तथा दान लेना और दान देना। **संजुगते**—संयुक्त। **चरनारबिन्द**—चरण कमल। **सुपच**—श्वपच, चांडाल। **अचेत**—बेसमझ। **अमरिओ**—अमर हो गया। **बिसेख**—विशेष। **सुआन सत्रु**—श्वपच, चाण्डाल। **अजातु** —नीच जाति का। **बपुरा**—बेचारा, दीन। **अजामलु**—अजामिल नाम का पापी ब्राह्मण जो मृत्यु के समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम पुकारने से तर गया। **पिंगुला**—एक प्राचीन वेश्या जो अपनी धर्मनिष्ठा केकारण तर गई। **लुभतु**—लुब्धक शिकारी जिसने भगवान् कृष्ण के चरणों में बाण मारा था। **कुंचरु**—कुंजर, हाथी, गजेन्द्र जो ग्राह से पकड़े जाने पर भगवान् का स्मरण कर मुक्त हुआ था। **निसतरे**—पार कर दिये।

थोथो जानि पछोरा रे कोई।
जोइ रे पछोरै जा मैं निजकन होई॥ टेक॥
थोथी काया थोथी माया।
थोथा हरि बिन जनम गंवाया॥ 1॥
थोथा पंडित थोथी बानी।

थोथी हरि बिनु सबै कहानी ॥ 2 ॥

थोथा मंदिर भोग बिलासा।

थोथी आन देव की आसा ॥ 3 ॥

साचा सुमिरन नाम बिसासा।

मन बच कर्म कहै रैदासा ॥ 4 ॥

थोथो —निस्सार। **पछोरौ**—फटको। **जोइ**—देखभाल कर। **निजकन**—आत्मसुख के कण। **बिसासा**—विश्वास।

भाई रे भरम भगति सुजान।

जौ लौं सांच सो नहिं पहिचान ॥ टेक ॥

भरम नाचन भरम गायन, भरम जप तप दान।

भरम सेवा भरम पूजा, भरम सो पहिचान ॥ 1 ॥

भरम षट क्रम सकल सहता, भरम गृह बन जानि।

भरम करि करि करम कीये, भरम की यह बानि ॥ 2 ॥

भरम इंद्री निग्रह कीया, भरम गुफा में बास।

भरम तौ लौं जानिए, सुन्न की करै आस ॥ 3 ॥

भरम सुद्ध सरीर तौ लौं, भरम नांव बिनांव।

भरम भनि रैदास तौ लौं, जौ लों चाहै ठांव ॥ 4 ॥

भरम भक्ति —झूठी, केवल दिखावे की भक्ति। **पहिचान**—परिचय, ज्ञान। वन जानि—वन में जा कर रहना। **वानि**—स्वभाव। **इंद्री निग्रह**—इंद्रियों को वश में करना। **सुन्न**—शून्य। **तौ लौं**—तब तक। **जौ लौं**—जब तक। **ठांव** —स्थान, ठिकाना, परिग्रह। **भरम भनि ठांव**—जब तक मन में परिग्रह अथवा संचैय की भावना है, तब तक सभी अन्य साधनाएं व्यर्थ हैं।

ऐसे जानि जपो रे जीव।

जपि ल्यो राम, न भरमो जीव॥ टेक॥

गनिका थी, किस करमा जोग।

पर-पुरुष सो रमती भोग॥ 1 ॥

निसि बासर दुस्करम कमाई।

राम कहत बैकुंठे जाई॥ 2॥

नामदेव कहिये जाति कै ओछ।

जाको जस गावै लोक॥ 3 ॥

भगति हेत भगता के चले।

अंकमाल ले बठिल मिले॥ 4 ॥

कोटि जग्य जो कोई करै।

राम नाम सम तउ न निरतैर॥ 5 ॥

निरगुन का गुन देखौ आई।

देही सहित कबीर सिधाई॥ 6॥

मोर कुचिल जाति कुचिल में बास।

भगत चरन हरि चरन निवास॥। 7॥

चारिउ बेद किया खंडौति।

जन रैदास करै डंडौति ॥8॥

गनिका—वेश्या। एक पौराणिक कथा है कि गणिका ने अपने तोते को राम-नाम का पाठ पढ़ा कर मोक्ष प्राप्त कर लिया। **निसिबासर**—दिन रात। **दुस्करम**—दुष्कर्म, पाप। **ओछ**—ओछी, नीच। **अंकमाल**—माला। **बठिल**—बीठलदास। एक प्रसिद्ध भक्त। किवंदती है कि भक्त बीठल माली का काम करता था। ध्यान-मग्न होने के कारण वह एक दिन राजा के यहां माला न पहुंचा सका। उस दिन भगवान् के स्वयं उसका रूप धारण कर राजा के यहां हार पहुंचा दिया। **जग्य**—यज्ञ। **निस्तैर**—मोक्ष प्राप्त करे। **देही सहित** —सशरीर। **कुचिल**—निम्न, मैला, गन्दा। **खंडौति**—खण्डन। **डंडौति**—नमस्कार।

नामु तेरो आरती भंजनु मुरारे।

हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे॥ 1॥ रहाउ॥

नामु तेरो आसनो नामु तेरे उरसा।

नामु तेरा केसरो ले छिटकारे॥

नामु तेरा अंभुला नामु तेरे चंदनो।

घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे॥ 1॥

नामु तेरो दीवा नामु तेरो बाती

नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे।

नाम तेरे की जोति लगाई

भाइओ उजिआरो भजन सगलारे॥ 2॥

नामु तेरो तागा नामु फूल माला

भार अठारह सगल जूठारे।

तेरी कीआ तुझहि किआ अरपउ

नामु तेरा तू ही चवर ढोलारे॥ 3॥

दसअठा अठसठे चारे खाणी इहै

वरतणि है सगल संसारै।

कहै रविदासु नाम तेरो आरती

सतिनाम है हरि भोग तुहारे॥ 4॥

सगल पसारै —समस्त संसार। **उरसा**—चन्दन घिसने की शिला। **अंभुला**—जल। **सगलारे**—समस्त, सारा। **तागा**—धागा। **भार**—लोक। **जूठारे**—जूठे। **दसअठा**—अठारह पुराण। **अठसठे** —अड़सठ तीर्थ स्थान। **चारे खाणी**—सृष्टि के चार सूत्र अथवा चतुर्धा सृष्टि। **सतिनाम**—सत्यनाम। **वरतणि**—व्याप्ति। **भोग**—भोज्य वस्तु, नैवेद्य।

आरती कहां लौ जोवै।

सेवक दास अचंभो होवै। टेक।

वावन कंचन दीप धरावै।

जड़ बैरागी दृष्टि न आवे॥ 1॥

कोटि भानु जाकी सोभा रौमै।

कहा आरती अगनी हौमै॥ 2॥

पांच तत्व तिरगुनी माया।

जो देखै सो सकल समाया॥ 3॥

कह रैदास देख हम माहीं।

सकल जोति रोम सम नाहीं॥ 4॥

आरती —नीराजना, थाली में दीपक सजाकर अभिनन्दन अथवा अर्चना करना। **कहां लौ**—कहां तक। **जोवै**—देखूं। **वावन**—बौना। **कंचनदीप**—स्वर्ण दीप। **कोटि**—करोडों, अनन्त। **भानु**—सूर्य। **रौमै**—रोयां अर्थात अंशमात्र। **होमै** —(अग्नि में) हवन करने पर। **पांच तत्व**—पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश, ये पांच तत्व है। **तिरगुनी माया**—सत्व, रज और तम-इन तीन गुणों से विशिष्ट माया अथवा प्रकृति। **रोम**—रोंगटा, रोयां, शरीर पर के बाल। **रोम सम**—बाल के समान, अत्यन्त क्षीण, अथवा अत्यल्प।

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ।

फुलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ॥ 1॥

माई गोबिन्द पूजा कहा लै चरावउ।

अवरुन फूलु अनूपु न पावउ॥ 1। रहाउ॥

मैलागर बेर्हे है भुइअंगा।

बिखु अमृतु बसहि इक संगा॥ 2॥

धूप दीप नईबेदहि बासा।

कैसे पूज करहि तेरी दासा ॥ 3 ॥

तनु मनु अरपउ पूज चरावउ।

गुर परसादि निरंजनु पावउ ॥ 4 ॥

पूजा अरचा आहि न तोरी।

कहि रविदास कवन गति मोरी ॥ 5 ॥

थनहु—स्तन को। **बिटारिओ**—जूठा कर दिया है। **भवरि**—भ्रमर ने। **मीनि**—मछली ने। **चरावउ**—चढ़ाऊं। **मैलागार**—मलय गिरि चंदन। **बेर्हे है**—लिपटे हैं। **भुइअंगा**—भुजंग, सांप। **अनूप** —अनुपम। **नईबेदहि**—नैवेद्य, पूजा में समर्पित की जाने वाली भोज्य वस्तु। **बासा**—सुगन्ध। **बिखु**—विष। **पूज**—पूजा। **अरचा**—पूजा। **आहि न**—नहीं हो सकी।

संत उतारै आरती देव सिरोमनिए।

उर अंतर तहां बैसे बिन रसना भनिए ॥ टेक ॥

मनसा मंदिर मांहि धूप धुपइये।

प्रेम-प्रीति की माल राम चढ़इये ॥ 1 ॥

चहु दिसि दियना वारि जगमग हो रहिये।

जोति जोति सम जोती हिलमिल हौ रहिये ॥ 2 ॥

तन-मन आतम बारि तहां हरि गाइये री।

भनत जन रैदास तुम सरना आइये री ॥ 3 ॥

देव सिरोमनिए —देव शिरोमणि, परम परमात्मा। **बिन रसना भनिए**—ज़बान से कहे बिना, मौन ही। **मनसा मंदिर**—मनरूपी मंदिर। **माल**—माला। **दियना**—दीपक। **बारि**—जला कर। **जोति**—घी का दीया, ज्योति स्वरूप आत्मा। **भनत**—कहता है। **सरना** —शरण।

गाइ गाइ अब का कहि गाऊं।

गावनहार को निकट बताऊं॥ टेक॥

जब लग है या तन की आसा, तब लग करै पुकारा।

जब मन मिल्यो आस नहिं तन की, तब को गावन हारा॥ 1॥

जब लग नदी न समुद समावै, तब लग बढ़ै हंकारा।

जब मन मिल्यो राम सागर सौं, तब यह मिटी पुकारा॥ 2॥

जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत्व सुनि गावै।

जहं-जहं आस धरत है यह मन, तहं तहं कछू न पावै॥ 3॥

छाड़ै आस निरास परम पद, तब सुखि सति कर होई।

कह रैदास जासौं और करत है, परम तत्व अब सोई॥ 4॥

पुकारा—पुकार, टेर। **हंकारा**—अहंकार, अहंता, ममत्व का भाव। **गावन हारा**—स्तुति गाना करने वाला। **सुनि**—सुन कर, श्रवण कर। **आस**—आशा। **निरास**—निराशा। **सुखि**—सुख, आनन्द। **सति कर**—सत्य का। **और** —भेद।

जिह कुल साधु बैसनो होइ।

बरन अबरन रंकु नहीं ईसरु।

बिमल जासु जानीऐ जगि सोइ॥ 1॥ रहाउ॥

ब्रहमण वैस सूद अरु ख्यत्री।

डोम चंडार मलेछ मन सोइ॥

होइ पुनीत भगवंत भजन ते,

आपु तारि तारै कुल दोइ॥ 1॥

धंनि सु गाउ धंनि सो ठाउ।

धंनि पुनीत कुटुंब सभ लोइ॥

जिनि पीआ सार रस तजै आन रस।

होइ रस मगन डारे बिखु खोइ॥ 2॥

पंडित सूर छत्रपति राजा।

भगत बराबरि अउरुन कोइ॥

जैसे पुरैन पात रहै जल समीप।

भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥ 3॥

बैसनो—वैष्णव, हरिभक्त। **रंकु**—निर्धन। **ईसुरु**—ईश्वर, राजा, धनिक। **ख्यत्री**—क्षत्रिय। **चंडाल** —चण्डाल। **पुनीत**—पवित्र। **तारै कुल दोई**—दोनों (माता-पिता के) कुलों को तार देता है। **धंनि**—धन्य। **गाउ** —गांव। **ठाउ**—स्थान। **लोइ**—लोग। **सार रस** —भक्ति का रस। **आन**—दूसरे। **आन रस**—विषय भोग। **पुरैन पात**—कमल का पत्ता। **भनि**—कहना है। **जनमे जग ओई**—उन्हीं का संसार में जन्म लेना सार्थक है।

मैं बेदनि कासनि आंखूं,

हरि बिन जिव न रहै कस राखूं॥ टेक॥

जिव तरसै इक दंग बसेरा,

करहु संभाल न सुर मुनि मेरा।

बिरह तपै तन अधिक जरावै,

नींद न आवै भोज न भावै॥ 1॥

सखी सहेली गरब गहेली,

पिउ की बात न सुनहु सहेली।

मैं रे दुहागनि अघ कर जानी,

गया सो जोबन साध न मानी॥ 2॥

तू साईं औ साहिब मेरा,

खिदमतगार बंदा में तेरा।

कह रैदास अंदेसा येही,

बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ॥ 3 ॥

बेदनि—वेदना, विहर की पीड़ा। **आखूं**—कहूं। **जिव**—जीव। **तरसै**—आकुल। **दंग**—विस्मित। **बसेरा**—आश्रम-स्थान। **जरावै**—जलाता है, तड़पता है। **भोज**—भोजन। **गरब गहेली**—गर्वीली। **दुहागिन**—अभागिनी। **अघ**—पाप। **अघ कर जानी**—पाप करना ही जाना है। **खिदमतगार**—सेवक। **जिवहि**—जिए। **सनेही**—प्रभु से प्रेम करने वाला, प्रेमी साधक।

दारिदु देखि सभ को हसै ऐसी दशा हमारी।

असट दसा सिधि करतलै सभ कृपा तुम्हारी ॥

जू जानत मैं किछु नहीं भवखंडन राम।

सगल जीअ सरनागती प्रभ पूरन काम ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

जो तेरी सरनागता तिन नाही भारु।

ऊंच नीच तुम ते तरे आलजु संसारु ॥ 2 ॥

कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै।

जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै ॥ 3 ॥

दारिदु—दरिद्र, निर्धन। **असट दसा सिधि**—अणिमा आदि आठों सिद्धियां। **भवखंडन**—जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त करने वाला। **जीअ**—जीव। **भारु**—भार, बोझ, सांसारिक जीवन की चिन्ताओं का बोझ। **आलजु**—झंझटों से भरा हुआ, आज तक, निर्लज्ज। **काइ**—क्या।

ज्यों तुम कारन केसवे, अंतरु लव लागी।

एक अनूपम अनुभवी, किमि होइ विभागी॥ टेक॥

इक अभिमानी चातृगा, विचरत जग माहीं।

यद्यपि जल पूरन महीं, कहूं वा रुचि नाहीं॥ 1॥

जैसे कामी देखि कामिनी, हृदय सूल उपजाई।

कोटि बैद बिधि ऊचरै, वाकी विथा न जाई॥ 2 ॥

जो तेहि चाहे सो मिलै, आरत गति होई।

कह रैदास यह गोप नहिं जानै सब कोई॥ 3॥

केसव—भगवान का एक नाम। **केसबे** —हे केशव। **अंतरु लव**—हार्दिक प्रेम। **किमि**—कैसे। **विभागी** —विभक्त, पृथक, खण्डित। **चातृगा**—चातक पक्षी। **महीं**—पृथ्वी। **कहूं**—कहीं भी। **वा** —उस की। **सूल**—शूल, वेदना। **ऊचरे**—उपचार करें। **वाकी** —उस की। **विथा**—व्यथा, काम वासना की पीड़ा। **आरत गति**—आर्तगति, भगवान के विरह में बेचैन साधक की अवस्था। **गोप**—गुप्त।

प्रभू जी संगति सरन तिहारी।

जग जीवन राम मुरारी ॥ टेक॥

गलि गलि को जल बहि आयो,

सुरसरि जाय समायो।

संगत के परताप महानतम,

नाम गंगोदक पायो॥ 1॥

स्वांति बूंद बरसै फनि ऊपर,

सीस विषै होइ जाई।

ओही बूंद कै मोती निपजै,

संगति की अधिकाई॥ 2॥

तुम चंदन हम रेंड बापुरे,

निकट तुम्हारे आसा।

संगत के परताप महातम

आवै बास सुबासा॥ 3॥

जाति भी ओछी करम भी ओछा,

ओछा कसब हमारा।

नीचै से प्रभु ऊंच कियो है,

कह रैदास चमारा॥ 4॥

मुरारी—मुर नाम के दैत्य को मारने के कारण भगवान का एक नाम। **सुरसरि**—गंगा। **गंगोदक**—गंगाजल। **स्वांति बूंद**—स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले जल की बूंद। **विषै**—विष, जहर। **ओही**—वही। **रेंड**—एरंड। **बापुरे**—दीन। **कसब**—व्यवसाय।

प्रीति सुधारन आव।

तेज सरूपी सकल सिरोमनि, अकल निरंजन राव॥ टेक॥

पिउ संग प्रेम कबहूं नहिं पायो, करनी कवन विसारी।

चक कौ ध्यान दधि सुत सों हेत है, यों तुमसे मैं न्यारी॥ ॥।

भवसागर मोहि इकटक जोवत तलफत रजनी जाई।

पिउ बिन सेजह क्यों सुख सोऊं, विरह विथा तन खाई॥ 2॥

मेट दुहाग सुहागिन कीजै, अपने अंग लगाई।

कह रैदास स्वामी क्यों विछोहे, एक पलक जुग जाई॥ 3॥

तेज सरूपी—तेज स्वरूप। **अकल** —अखण्ड। **निरंजन राव**—निर्लिप्त। **चक**—चक्रवाक। **दधि सुत** —चन्द्रमा। **न्यारी**—अलग। **जोवत**—प्रतीक्षा करते हुए। **तलफत**—तड़पते हुए। **रजनी** —रात्रि। **बिछोहे**—अलग कर दिया। **जुग**—युग के समान।

या रामा एक तूं दाना, तेरी आदि भेख ना।

तूं सुलताने सुलताना, बंदा सकिसता अजान॥ टेक॥

मैं बेदियानत न नजर दे, दरमंद बरखुरदार।

बेअदब बदबखत बौरा, बे अकल बदकार॥ 1॥

मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिला दिलतार।

तूं कादिर दरिया वजिहावन, मैं हिरसिया हुसियार॥ 2॥

यह तन हस्त-खस्त खराब, खातिर अंदेसा बिसियार।

रैदास दासहि बोलि साहब, देहु अब दीदार॥ 3॥

दाना—बुद्धिमान। **भेख** —रूप। **सुलताने सुलताना**—बादशाहों का बादशाह, सम्राट। **बंदा**—सेवक। **सकिसता** —शिकस्ता, कमज़ोर। **अजाना**—अनजान। **बेदियानत**—बेईमान। **न नज़र दे**—ध्यान न दो। **दरमंद** —मज़बूर। **बरखुरदार**—सपुत्र (सेवक)। **बेअदब**—बड़ों का सम्मान करने वाला। **बदबखत** —अभागा। **बौरा**—पागल। **बदकार**—दुष्कर्म करने वाला। **गाफिल**—प्रमादी, गफलत करने वाला। **कमदिला**—तंग दिल। **दिलतार** —काले दिलवाला। **कादिर**—समर्थ। **दरिया वजिहावन**—भव सागर से पार करने वाला। **हिरसिया** —लालची, लोभी। **हुसियार**—होशियार, चालाक। **हस्त**—है। **खस्त**—खस्ता, विनाशशील। **अंदेसा** —चिन्ता। **बिसियार**—बहुत। **बोलि**—बुलाकर। **दीदार** —दर्शन।

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चमारं

रिदै राम गोविंद गुन सारं॥ 1॥ रहाउ॥

सुरसरी सलल कृत बारूनी रे संत जन करत नहीं पानं।

सुरा अपवित्र न ते अवर जल रे सुरसरी मिलत नहि होइ आनं॥ 1॥

तर तारी अपवित्र करि मानीऐ रे जैसे कागरा करत बीचारं।

भगति भागउत लिखीऐ तिह ऊपरे पूजीऐ करि नमस्कारं॥ 2॥

मेरी जाति कुटुंब ढांला ढोर ढोवंता नितहि बनारसी आस-पासा।

अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति।

तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा॥ 3॥

बिखिआत—विख्यात, प्रसिद्ध। **रिदै** —हृदय। **सुरसरी**—गंगा। **सलल**—सलिल, जल। **बारूनी** —मदिरा। **तरतारी**—ताड़ी का वृक्ष (जिसकी छाल कागज बनाने के काम आती है)। **कागरा**—कागज। **भागउत**—श्रीमद्‌भागवत। **ढाला** —ढले, मृत। **ढोर**—पशु। **ढोवंता**—ढोते हैं। **परधान**—प्रमुख। **डंटउति**—दण्डवत्, नमस्कार। **सरणइ** —शरणागति।

संत तुझी तनु संगति प्रान।

सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव॥ 1॥

संत ची संगति संत कथा रसु।

संत प्रेम माझै दीजै देवादेव॥ 1॥ रहाउ॥

संत आचरण संत चो मारगू संत च ओल्हग ओल्हगणी॥ 2॥

अउर इक मागउ भगति चितामणि।

जणी लखावहु असंत पापीसणि॥ 3॥

रविदास भणै जो जाणै सो जाणु।

संत अनन्तहि अंतरु नाही॥ 4॥

देवादेव—देवाधिदेव। **संत ची** —संत की। **माझै**—मुझे। **संत चो**—संत का। **ओल्हग ओल्हगणी** —जूठ साफ करने वाले। वे केवल संतजनों के सेवक ही नहीं, वरन् उनके सेवकों के भी सेवक (दासानुदास) होने की साध करते हैं। **पापीसणि**—पापों से सना-भरा हुआ, अत्यन्त पापी। **भणै**—कहता है। **अंतरु**—अन्तर, भेद।

आज दिवस लेऊं बलिहारा।

मेरे घर आया राम का प्यारा।। टेक।

आंगन बंगला भवन भयो पावन।

हरिजन बैठे हरिजस गावन।। 1।।

करूं डंडवत चरन पखारूं।

तन-मन धन उन ऊपरि वारूं।। 2।।

कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं।

आप तरैं औरन को तारैं। 3।।

कह रैदास मिलैं निज दास।

जनम जनम के काटै पास।। 4।।

हरिजन—भक्त जन। **डंडवत**—दण्डवत नमस्कार। **पखारूं**—धोऊं। **पास**—पाश, बन्धन।

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु।

प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जनु।। 1।।

तुझहि चरन अरविंद भवन मनु।

पान करत पाइओ रामईआ धनु।। 1।। रहाउ।।

संपति बिपति पटल माइआ धनु।

तामहि मगन होत न तेरो जनु।। 2।।

प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जनु।

कहि रविदास छूटिबो कवन गुन।। 3।।

कहा भइओ—क्या हुआ। **तनु**—शरीर। **छिनु**—क्षीण, क्षणिक। **डरपै**—डरता है। **तेरो जनु**—तेरा भक्त। **भवन**—आश्रय। **मनु**—मन। **पटल**—आवरण। **जेवरी**—रस्सी। **कवन गुन**—किस योग्यता के बल पर।

भगति ऐसी सुनहु रे भाई।

आइ भगति तब गई बड़ाई।।टेक।।

कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे

कहा भयो जे चरन पखारे, जौं लौं तत्व न चीन्हे।।1।।

कहा भयो जे मूंड मुंड़ायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।

स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्व नहिं चीन्हे।।2।।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।

तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलिक ह्वै चुनि खावै।।3।।

बड़ाई—बड़प्पन, अभिमान। **नाचे अरु गाये**—कीर्तन आदि करने से। **चरन पखारे**—चरण धोने से, अथवा मूर्ति पूजन करने से। **जौं लौं**—जब तक। **न चीन्हे**—नहीं पहिचाना। **आपा**—अहंकार। **पिपिलिक ह्वै**—च्यूंटी हो कर, अर्थात् छोटा बन कर, अपने अहं को बिल्कुल समाप्त कर। धूल में मिली चीनी को च्यूंटी ही अलग करके खा सकती है, यह काम हाथी नहीं कर सकता। इसी प्रकार भक्ति का आनंद लेने के लिए सर्वप्रथम अपने अहं को दबाना पड़ता है, छोटा होना पड़ता है।

अब मेरी बूड़ी रे भाई, ताते चढ़ी लोक बड़ाई।।टेक।।

अति अहंकार उर मा सत रज तम, तामें रह्यो उरझाई।

कर्मन बंझि पर्यो, कछु नहिं सूझै, स्वामी नांव भुलाई।।1।।

हम मानौ गुनी, जोग सुनि जुगता, महामुरख रे भाई।

हम मानो सूर सकल बिधि त्यागी, ममता नहीं मिटाई।।2।।

हम मानो अखिल, सुन्न मन सोध्यो, सब चेतन सुधि पाई।

ज्ञान ध्यान सब ही हम जान्यो, बूझौं कौन सों जाई।।3।।

हम जानौ प्रेम प्रेमरस जानै, नौबिधि भगति कराई।

स्वांग देखि सब ही जन लटक्यो फिरियों आन बंधाई।।4।।

यह तो स्वांग साच ना जानो, लोगन यह भरमाई।

स्वच्छ रूप से ली जब पहरी, बोली तब सुधि आई।।5।।

ऐसी भगति हमारी संतो, प्रभुता इहै बड़ाई।

आपन अनत और नहिं मानत, ताते मूल गंवाई।।6।।

मन रैदास उदास ताहि ते, अब कुछ मो पै कर्‌यो न जाई।

आपा खोए भगति होत है, तब रहै अंतर उरझाई।।7।।

उर—हृदय। **सुन्न**—शून्य-समाधि। **बूझौं**—पूछूं। **नौ विधि**—नौ प्रकार की भक्ति। **लटक्यो**—भ्रम में पड़े हुए, विमोहित। **आपन**—अपने में। **अनत**—दूसरे में। **और नहीं मानत**—भेद नहीं मानते। **आपा**—अहंकार।

संतो अनिन भगति यह नाहीं।

जब लग सिरजन मन पांचों गुन, व्याप्त है या माहीं।।टेक।।

सोई आन अंतर करि हरि सो, अपमारग को आनै।

काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल-पल पूजा ठानै।।1।।

सत्य सनेह इष्ट अंग लावै, अस्थल अस्थल खेलै।

जो कुछ मिलै आन आखत सौं, सुत दारा सिर मेलै।।2।।

हरिजन हरिहि और न जानै, तजै आन तन त्यागी।

कह रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी।।3।।

आनन—अनन्य। **सिरजत**—रचना, निर्माण। **पाचों गुण**—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। **अंतर करि**—अलग हो कर। **अपमारग**—कुमार्ग। **इष्ट अंग**—प्रेमी के शरीर में। **खेलै**—आनन्द लेता है। **अस्थल अस्थल**—स्थान-स्थान में। **आन**—अन्न। **आखत**—अक्षत, चावल। **आन (तन)**—अन्य।

ऐसी भगति न होइ रे भाई।

राम नाम बिनु जो कुछ करिये, सो सब भरमु कहाई।। टेक।।

भगति न रस दान, भगति न कथै ज्ञान।

भगति न बन में गुफा खुदाई।। 1।।

भगति न ऐसी हांसी, भगति न आसा-पासी।

भगति न यह सब कुल कान गंवाई।। 2।।

भगति न इंद्री बांधा भगति न जोग साधा।

भगति न अहार घटाई, ये सब करम कहाई।। 3।।

भगति न इंद्री साधे, भगति न वैराग बांधे।

भगति न ये सब वेद बड़ाई।। 4।।

भगति न मूड़ मुंडाए, भगति न माला दिखाये।

भगति न चरन धुवाए, ये सब गुनी जन कहाई।। 5।।

भगति न तौ लौं जाना, आपको आप बखाना।

जोइ-जोइ करै सो-सो करम बड़ाई।। 6।।

आपो गयो तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई।

राम मिल्यो आपो गुन खोयो, रिधि सिधि सबै गंवाई।। 7।।

कह रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताही के पास।

आत्मा थिर भई तब सबही निधि पाई।। 8।।

आसा—पासी, आशा-पाश, आशा का बंधन। **कुल कान**—कुल की मर्यादा। **हआर**—आहार, भोजन। **मूंड़**—सिर। **थिर**—स्थिर।

जो तुम गोपाललहिं नहिं गैहो।

तो तुम कां सुख में दुःख उपजै, सुखहिं, कहां ते पैहो।। टेका।।

माला नाय सकल जग डहको, झूंठो भेख बनैहो।

झूंठे ते सांचे तब होइहौ, हरि की सरन जब ऐहौ।। 1।।

कनरस बतरस और सबै रस, झूंठिहिं मूड डोलेहौ।

जब लगि तेल दिया में बाती, देखत ही बुझि जैहौ।। 2।।

जो जन राम नाम रंग राते और रंग न सुहैहो।

कह रैदास सुनो रे कृपानिधि, प्रान गये पछितैहो।। 3।।

गैहो—शरण नहीं पकड़ते। **पैहो**—प्राप्त करोगे। **डहको**—धोखा दिया। **कनरस**—सुनने का रस। **बतरस**—बातें करने का रस। **डोले हौं**—सिर हिला कर प्रसन्नत प्रकट करते हो। **और रंग न सुहै हो**—उन्हें किसी दूसरी वस्तु में आनन्द नहीं आता।

हरि बिन नहिं कोई पतित पावन, आनहिं ध्यावे रे।

हम अपूज्य भये हरि ते, नाम अनुपम गावै रे। टेक।।

अष्टादस व्याकरन बखानैं, तीनि काल षट जीता रे।

प्रेम भगति अंतर गति नाहीं, ता ते धानुक नीका रे।। 1।।

ता ते भलो स्वान को सत्रू, हरि चरनन चित लावै रे।

मूआ मुक्त बैकुंठ बास, जिवत यहां जस पावै रे।। 2।।

हम अपराधी नीच घर जनमे, कुटुंब लोग करै हांसी रे।

कह रैदास राम जपु रसना, कटै जनम की फांसी रे। ।। 3।।

आनहि—दूसरे को। **अनुपम**—अनुपम, अनूठा। **अष्टादस**—18 पुराण। **तीनि काल**—भूत, वर्तमान और भविष्यत्। **षट**—षड्दर्शन-सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उतर मीमांसा अथवा वेदान्त। **ताते**—उस से। **धानुक-धुनिया**—एक नीच जाति। **नीका**—अच्छा। **स्वान को सत्रू**—श्वपच, चाण्डाल।

यह अंदेस सोच जिय मेरे

निसि बासर गुन गाऊं तेरे ॥ टेक ॥

तुम चिंतत मेरी चिंतहु जाई।

तुम चिंतामनि हौं इक नाई ॥ 1 ॥

भगति हेत का का नहिं कीन्हा।

हमरी बेर भये बल हीना ॥ 2 ॥

कह रैदास दास अपराधी।

जेहि तुम द्रवौ सो भगति न साधी ॥ 3 ॥

अंदेस—चिन्ता, विचार। **तुम चिंतत**—तुम्हारा चिन्तन करने से। **चिंतामनि**—कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ। **नाई**—सदृश। **का का**—किस का। **द्रवौ**—(करुणा) से द्रवित हो।

जउ हम बांधे मोह फांस हम प्रेम बंधनि तुम बांधे।

अपने छूटन को जतनु करहु हम छूटे तुम आराधे ॥ 1 ॥

माधवे जानत हहु जैसी तैसी।

अब कहा करहुगे ऐसी ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ रांधि कीओ बहु बानी।

खण्ड-खण्ड करि भोजनु कीनो तऊ न बिसरिओ पानी ॥ 2 ॥

आप बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा।

मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नहीं संतापा ॥ 3 ॥

कहि रविदारा भगति इक बादी अब इह कासिउ कहीऐ।

जा कारनि हम तुम आराधे सो दुखु अजहू सहीऐ ॥ 4 ॥

तुम आराधे—तुम्हारी उपासना करने से। **जैसी तैसी**—वास्तविक स्थिति। **फांकियो** —काटी गई। **रांधि**—पका कर। **बहुबानी**—अनेक प्रकार से।

धन्य हरिभक्ति त्रैलोकयश पावनी।

करौ सतसंग इहि विमल यश गावनी॥ टेक॥

वेद तें पुराण पुराण तें भागवत, भागवत तें भक्ति प्रकट कीन्हीं।

भक्ति ते प्रेम प्रेम ते लक्षणा, बिन सत्संग नहिं जाति चीन्ही॥ 1॥

गंगा पाप हरैं शशि ताप अरु कल्पतरू दीनता दूरि खोवैं।

पाप अरु ताप सब तुच्छ मति दूर करि,

अमी की दृष्टि जब संत जोवैं॥ 2॥

विष्णु भक्त जिते चित्त पर धर तिते, मन बच करम करि विश्वासा।

संत धरणी धरी कीर्ति जग बिस्तरी

प्रणत जन चरण रैदास दासा॥ 3॥

लक्षणा—यहां अद्वैत भाव से अभिप्राय है जिसमें साध्य और साधक में भेद नहीं रहता। **नहिं जाति चीन्ही**—पाहेचानी नहीं जाती, प्राप्त नहीं की जाती। **कल्पतरु**—सभी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ एक कल्पित वृक्ष। **अमी**—अमृत। **जिते**—जितने। **तिते**—उन सब को। **संत धरणी धरी**—यह पृथ्वी संतों पर आश्रित है।

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा।

जउ तुम चन्द तउ हम भए हैं चकोरा॥ 1॥

माधवे तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहि।

तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि॥ 1॥ रहाउ॥

जउ तुम दीवरा तउ हम बाती।

जउ तुम तीरथ तउ हम जाती॥ 2॥

साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी।

तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी॥ 3॥

जह जह जाउ तहा तेरी सेवा।

तुम सो ठाकरु अउरु न देवा ॥ 4 ॥

तुमरे भजन कटहि जम फांसा।

भगति हेति गावै रविदासा ॥ 5 ॥

जउ—जो, यदि। **सिउ**—से। **दीवरा** —दीपक। **जाती**—यात्री। **अवर**—दूसरा। **ठाकुरु**—उपास्य।

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा।

कनक कटिक जल तरंग जैसा ॥ 1 ॥

जउपै हम न पाप करंता अहे अनन्ता।

पतित पावन नामु कैसे हुंता ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

तुम्ह जु नाइक आछहु अंतरजामी।

प्रभ ते जनु जानीजै जन ते सुआमी ॥ 2 ॥

सरीरू आराधै मो कउ बीचारू देहू।

रविदास समदल समझावै कोऊ ॥ 3 ॥

अंतरू—भेद। **कनक**—सोना। **कटिक** —कंकण। **ज उपै**—यदि। **अनन्ता**—जिस का अन्त न हो। **हुंता**—होता। **नाइक**—स्वामी। **आछहु**—हो। **अंतरजामी**—दिल की बात जानने वाला। **जानो जै** —जाना जाता है। **मो कउ**—मुझ को। **समदल**—समानता रखने वाला।

अब कैसे छूटे नाम रट लागी ॥ टेक ॥

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी।

जाकी अंग अंग बास समानी ॥ 1 ॥

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा।

जैसे चितवन चंद चकोरा ॥ 2 ॥

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती।

जा की जोति बरै दिन राती॥ 3॥

प्रभु जी तुम मोती हम धागा।

जैसे सोनहिं मिलत सोहागा॥ 4॥

प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा।

ऐसी भक्ति करै रैदासा॥ 5॥

बास—सुगन्ध। **धन**—मेघ। **चितवत** —देखता रहता है। **बरै**—जलती रहती है।

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा।

नीच रुख ते ऊं भए है गंध सुगंध निवासा॥ 1॥

माधउ सतसंगति सरनि तुम्हारी।

हम अउगुन तुम्ह उपकारी॥ 1॥ रहाउ॥

तुम मखतूल सुपेद सपीअल हम बपुरे जस कीरा।

सत संगति मिलि रहीऐ माधउ जैसे मधुप मखीरा॥ 2॥

जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनम हमारा।

राजा राम की सेव न कीनी कहि रविदास चमारा॥ 3॥

इरंड—एरंड, रेंड। **बापुरे**—बेचारा, दीन। **बासा** —निवास। **मखतूल**—रेशम। **सुपेद**—स्फेद, श्वेत। **सपीअल**—अत्यधिक स्फेद। **मधुप मखीरा**—शहद की मक्खी।

मिलत पिआरो प्रान नाथु कवन भगति ते।

साध संगति पाई परम गते॥ रहाउ॥

मैले कपरे कहा लउ धोवउ।

आवैगी नींद कहा लगु सोवउ॥ 1॥

जोई जोई जोरिओ सोई सोई फाटिओ।

झूठे बनिज उठि गई हाटिऔ॥ 2॥

कहु रविदास भइओ जब लेखो।

जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ॥ 3॥

कवन—कौन सी। **परम गते**—मोक्ष। **जोरिओ**—संबंध जोड़ा। **फाटिओ**—फट गया, बिछुड़ गया। **बनिज**—व्यापार। **हाटिओ**—हाट, पेठ।

बिनु देखे उपजै नहीं आसा।

जो दीसै सो होइ बिनासा।

बरन सहित जो जापै नामु।

सो जोगी केवल निहकामु॥ 1॥

परचै रामु रवै जउ कोई।

पारसु परसै दुविधा न होई॥ 1। रहाउ॥

सो मुनि मन की दुबिधाखाइ।

बिनु दुआरे त्रै लोक समाइ॥

मन का सुभाउ सभु कोई करै।

करता होइ सु अनभै रहै॥ 2॥

फल कारन फूली बनराइ।

फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥

गिआनै कारन करन अभिआसु।

गिआनु भइआ तह करमह नासु॥ 3॥

घृत कारन दधि मथै सइआन।

जीवत मुक्त सदा निरबान॥

कहि रविदास परम बैराग।

रिदै रामु की न जपसि अभाग॥ 4॥

उपजै—उत्पन्न होती। **दीसै** —दिखाई देता है। **निहकामु** —निष्काम, कामना-रहित। **परचै**—परिचय प्राप्त कर, समझ कर। **रवै**—रमण करता है। **पारसु परसै**—पारस का स्पर्श प्राप्त करता है। **दुविधा**—संशय। **बिनु दुआरे**—बिना द्वार के, सहज ही। **अनभै**—निर्भय। **बनराइ** —वन, वृक्षों का समूह। **बिलाई**—नष्ट हो जाता है। **अभिआसु**—अभ्यास। **सइआन**—चतुर। **निरबान**—मोक्ष। **रिदै**—हृदय। **की न**—क्यों नहीं।

दैहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधु है मतवाला॥ टेक॥

हैं रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा प्याला दिया॥ 1॥

कहै कलाली प्याला देऊं, पीवन हारे का सिर लेऊं॥ 2॥

चंद सूर दोउ सनमुख होई पीवै प्याला मरै न कोई॥ 3॥

सहज सुन्न में भाठी सरवै पावै रैदास, गुरुमुख दरवै॥ 4॥

कलाली—मदिरा बेचने वाली स्त्री। **प्याला**—मदिरा का प्याला। **अवधू** —अवधूत, बैरागी, साधु। **सिरका** —ईख के रस आदि से तैयार किया गया एक तीखा रस। **चंद सूर**—चांद और सूर्य। **सहज सुन्न**—स्वानुभूति। **सरवै**—पकती है। **गुरुमुख दरवै**—गुरु मुख के द्वारा।

सह की सार सुहागनि जानै।

तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै॥

तनु मनु देइ न अंतरु राखै।
अवरा देखि न सुनै अभाखै॥ 1॥
सो कत जानै पीर पराई।
जा कै अंतरि दरदु न पाई॥ 1॥ रहाउ॥
दुखी दुहांगनि दुइ पख हीनी।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
पुरसलात का पंथ दुहेला।
संगि न साथी गवन इकेला॥ 2॥
दुखिआ दरदुवंदु दरि आइआ।
बहुत पिआस जवावु न पाइआ॥
कहि रविदास सरनि प्रभ तेरी।
जिउ जानहु तिउ करू गति मेरी॥ 3॥

सह—मिलन। **सार**—रहस्य, तत्व। **सुख रलीआ** —एकाकार होने का आनन्द। **अंतरु**—भेद। **अवरा**—दूसरा। **कत**—कैसे। **दुहागनि**—अभागिन, विधवा। **दुइ पख होनी**—दोनों पक्षों से हीन। **नाह**—नाथ। **पुरसलात** —परमात्मा में रति। **दुहेला**—कठिन। **गवन**—गमन, चलना। **दरि**—द्वार। **सरनि**—शरण, आश्रय।

जब हम होते तब तू नाही अब तू ही मैं नाही।
अनल अगम जैसे लहर मइओदधि जल केवल जल मांही॥ 1॥
माधवे किआ कहीऐ भ्रमु ऐसा।
जैसा मानीएं होई न तैसा॥ 1॥ रहाउ॥
नरपति एकु सिंघासनि सोइआ सुपे भइया भिखारी।
अछत राज बिछुरत दुखु पाइया सो गति भई हमारी॥ 2॥

राज भुइंग प्रसंग जैसे हहि अब कुछ मरम जनाइआ।

कनिक कटक जैसे भूलि परे अब कहते कहनु न आइआ॥ 3॥

सरबै एकु अनेकै सुआमी सभ घट भोगवै सोई।

कहि रविदास हाथ पै नैरै सहजे होइ सु होई॥ 4॥

होते—थे। **अनल अगम**—समुद्र की आग। **मइओदधि** —समुद्र। **अछत** — रहते हुए भी। **राज**—राज्य। **राज**—रज्जु, रस्सी। **राज भुइअंग प्रसंग** — रस्सी को सांप समझ लेने की बात। **कनिक**—कनक, सोना। **कटक**—कंकण। **भोगवै** — विद्यमान है, मौजूद है।

रथ को चतुर चलावन हारो।

खिन हाकै खिन उभटै राखे, नहीं आन कौ सारो॥ टेक॥

जब रथ थकै सारथी थाकै, तब को रथहि चलावै।

नाद बिंदु ये सब ही थाके, मन मंगल नहिं गावै॥ 1॥

पांच तत्त को यह रथ साज्यो, अरधै उरध निवासा।

चरन कमल लव लाइ रह्यो है, गुन गावै रैदासा॥ 2॥

रथ—शरीर से अभिप्राय है। **खिन**—क्षण में। **उभटै** —अहंकार पूर्वक व्यवहार करता है। **सारथी** —रथ अर्थात् शरीर को चलाने वाला, मन। **नाद बिंदु**—समाधि व्यवस्था में भीतर से उठने वाली मधुर ध्वनि जिसके साथ योगी जन तल्लीनता का अनुभव करते हैं। **पांच तत्व**—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। **अरदै-उरध**—आधा ऊर्ध्व। **लव**—प्रेम, भक्ति।

सुकछु विचार्‌यो तातें मेरी मन थिरु ह्वै गयो।

हारे रंग लाग्यो तब बरन पलटि भयो॥ टेक॥

जिन यह पंथी पंथ चलावा।

अगम गवन में गम दिखलावा॥ 1॥

अबरन बरन कहै जनि कोई।

घट-घट व्यापि रह्‌यो हरि सोई।

जेइ पद सुन नर प्रेम पियासा।

सो पद रमि रह्‌यो जन रैदासा॥ 2॥

सुकछु—थोड़ा सा। **हारे रंग**—भगवत्प्रेम का रंग। **पलटि भयो** —उलट गया, बदल गया। **पंथी** —पंथ चलाने वाला, पथिक, संत। **गबन**—गमन, प्राप्ति, प्रवेश। **अगम गवन**—अगम्य की प्राप्ति के लिए। **गम**—प्रवेश। **अबरन**—अवर्णनीय, अनिर्वचनीय। **कोई जानि** —कुछ लोग। **राम रह्‌यो** —रमते हैं, आनन्द लेते हैं।

बरजि हो बरजिवो उतूले माया।

जग खेया महाप्रबल सबही बस करिये,

सुरनर मुनि भरमाया॥ टेक॥

बालक वृद्ध तरुन अरु सुन्दर, नाना भेष बनावै।

जोगी जती तपी संन्यासी, पंडित रहन न पावै॥ 1॥

बाजीगर के बाजी कारन, सब को कौतिग आवै।

जो देखे सो भूलि रहै, वा का चेला मरम जो पावै॥ 2॥

षड ब्रहमण्ड लोक सब जीते, येहि बिधि तेज जनावै।

सब ही का चित्त चोर लिया है, वा के पाछे लागे धावै॥ 3॥

इन बातन से पचि मरियत है, सब को कहै तुम्हारी।

नेक अटक किन राखो केसौ, मेटो बिपति हमारी ॥ 4 ॥

कह रैदास उदास भयो मन भाजि कहां अब जैये।

इत उत तुम गोविंद गोसाई, तुमहीं माहिं समैये ॥ 5 ॥

बरजिवो—वर्जना (हटाना), हटायो, छुड़ाओ। **उतूल**—प्रबल। **खेया** —खाया। **बाजीगर**—खेल करने वाला। **कौतिग**—कौतुक, तमाशा। **षड ब्रह्मण्ड**—छः ब्रह्मण्ड। **पचि मरियत है**—थक हार गये हैं। **नेक** —तनिक। **किन** —क्यों न। **केसो** —परमात्मा। **भाजि जैये** —भाग कर जायें। **इत उत्त** —इधर-उधर, सर्वत्र। **समैये** —समाना, मिलना, लीन होना।

माटी को पुतरा कैसे नचतु है।

देखै देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

जब कछु पावै तप गरबु करत है।

मइआ गई तब रोवनु लगतु है ॥ 1 ॥

मन बच क्रम रस कसहि लुभाना।

बिनसि गइआ जाइ कहूं समाना ॥ 2 ॥

कहि रविदास बाजी जगु भाई।

बाजीगर सउ मोहु प्रीति बनि आई ॥ 3 ॥

माटी को पुतरा—मिट्टी का पुतला, मानव-शरीर। **गरबु**—गर्व, अहंकार। **रोवनु लगतु है** —रोने लगता है। **मन बच क्रम**—मन, वाणी और कर्म। **विनसि गइआ**—नष्ट हो गया। **बाजीगर**—जादू के खेल करने वाला। **सउ**—से।

राम भगत को जन न कहाऊं, सेवा करूं न दासा।
जाग, जग्य, गुन कछू न जानूं, ताते रहूं उदासा॥ टेक॥
भगत हुआ तो चढ़ै बड़ाई, जोग करूं जग मानै।
गुन हुआ तो गुनी जन कहै, गुनी आप को आनै॥ 1॥
ना मैं ममता मोह न महिमा, ये सब जाहिं बिलाई।
दोजख भिस्त दोउ सम कर जानौं, दुहूं ते तरक है भाई॥ 2॥
मैं अरु ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गंवाई।
जब मन ममता एक एक मन, तबहि एक है भाई॥ 3॥
कृस्न करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा।
बेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥ 4॥
जोइ जोइ पूजिय सोइ-सोइ कांची, सहज भाव सत होई।
कह रैदास मैं ताहि को पुजूं, जाके ठांव नांव नहिं होई॥ 5॥

बड़ाई—महिमा। **जोग** —योग साधना। **महिमा**—बड़ाई। **जाहिं बिलाई** —लुप्त हो जाते हैं। **दोजख**—नरक। **भिस्त**—बहिश्त, स्वर्ग। **तरक** —त्याग। **मैं** —ममत्व की भावना। **पेखा** —देखा। **नांव**—नाम।

अखिल खिलै नहिं का कहि पंडित, कोइन कहै समुझाई।
अबरन बरन रूप नहिं जाके कहं, लौ लाइ समाई॥ टेक॥
चंद सूर नहिं रात दिवस नहिं, धरनि अकास न भाई।
करम अकरम नहिं सुभ असुभ नहिं, का कहि देहुं बड़ाई॥ 1॥
सीत वायु ऊसन नहिं सरवत, काम कुटिल नहिं होई।
जोग न भोग क्रिया नहिं जाके, कहौं नाम सत सोई॥ 2॥
निरंजन निराकार निरलेपी, निरवीकार निसासी।
काम कुटिलता ही कहि गावैं, हरहर आवै हांसी॥ 3॥
गगन धूर-धूप नहिं जाके, पवन पूर नहिं पानी।

गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके, कहौ तुम बात सयानी॥ 4॥

याही सों तुम जोग कहत हौ, जब लग आस की पासी।

छुटै तबहि जब मिलै एक ही, भन रैदास उदासी॥ 5॥

अखिल—सम्पूर्ण, अखण्ड। **अवरन**—अवर्णनीय, वर्णनातीत। **बरन** —रंग। **रूप**—आकार। **ऊसन**—ओस। **सरवत**—हर जगह। **निरलेपी** —निर्लिप्त, असंग। **निरबीकार** —निर्विकार, विकार, रहित। **निसासी** —श्वास-निश्वास से रहित। **गगन** —आकाश। **धूर** —पृथ्वी। **हरहर** —हरा करके, ठहाका मार कर। **पवन पूर** —वायु की तरंग अथवा वायु-वेग। **आस** —आशा। **पास** —पाश, बंधन। **मन** —कहता है।

है सब आतम सुख परकास सांचो।

निरंतर निराहार कलपित ये पांचों। टेक।

आदि मध्य औसान एक रस, तार बन्यो हो भाई।

थावर जंगम कीट पंतगा, पूरि रहयो हरि राई॥ 1॥

सवेश्वर सर्वांगी सबगति, करता हरता सोई।

सिव न असिव, न साध अस सेवक, उनै भाव नहि होई॥ 2॥

धरम अधरम मोच्छ नहिं बंधन, जरा मरन भव नासा।

दृष्टि अदृष्टि गेय अरु ज्ञाना, एकमेक रैदासा॥ 3॥

आतम सुख—आत्मा में लीन होने का आनंद। **परकास**—प्रकाश। **निरन्तर** —लगातार रहने वाला। **औसान**—अवसान, अन्त। **थावर**—स्थावर, अचर। **जंगम**—चर, जीवधारी। **सबगति**—जिस की सर्वत्र गति हो, सर्व व्यापक। **करता** —कर्ता, करने वाला। **हरता** —हर्ता, संहार करने वाला। **सिव** —शिव, मंगलकारी। **असिव** —अशिव, अमंगलकारी। **भाव** —विकार। **गेय** —ज्ञान का विषय। **एकमेक** —एक ही।

भेष लियो पै भेद न जान्यो।

अमृत लेइ विषै सो मान्यो॥ टेक॥

काम क्रोध में जनम गंवायो।

साधु संगति मिलि राम न गायो॥ 1॥

तिलक दियो पै तपनि न जाई।

माला पहिरे घनेरी लाई॥ 2॥

कह रैदास मरम जो पाऊं।

देव निरंजन सत कर ध्याऊं॥ 3॥

भेष—साधु का वेष, पहिरावा। **भेद**—रहस्य। **अमृत** —आत्मा। **विषै**—विषय, भोग विलास। **तपनि**—जलन, पीड़ा। **घनेरी**—और अधिक। **लाई**—(आग) लगाई। **मरम** —मर्म, रहस्य। **सत कर** —सत्य का। **ध्याऊं** —ध्यान करूं।

भाई रे सहज बंदो लोई, विन सहज सिद्धि न होई।

लौलीन मन जो जानिये, तब कीट भृंगी होई॥ टेक॥

आपा पर चीन्हें नहीं रे, और को उपदेस।

कहां से तुम आयो रे भाई, जाहुगे किस देस॥ 1॥

कहिये तो कहिये काहि कहिए, कहां कौन पतिआई।

रैदास दास अजान ह्वै करि, रह्यो सहज समाई॥ 2॥

बंदो लोई—वन्दना कर लो, चिन्तन कर लो। **कीट भृंगी होई** —कीट भृंग का चिन्तन करते-करते भृंग हो जाता है। **आपा**—अहंकार। **अजाने ह्वै** —न जानते हुए अनजाने में ही।

ऐसो कछु अनुभौ कहत न आवै।

साहिब मिलै तो को बिलगावै॥ टेक॥

सब में हरि है, हरि में सब है, हरि अपनो जिन जाना।

साखी नहीं और कोई दूसर, जाननहार सयाना॥ 1॥

बाजीगर सो रांचि रहा, बाजी का मरम न जाना।

बाजी झूठ सांच बाजीगर, जाना मन पतियाना॥ 2॥

मन थिर होइ तो कोई न सूझै, जानै जाननहारा।

रह रैदास बिमल विवेक सुख, सहज सरूप संभारा॥ 3॥

अनुभौ—अनुभव। **बिलगावै**—पृथक होना चाहेगा। **साखी** —साक्षी। **बाजीगर**—खेल खेलने वाला। **बाजी**—खेल, संसार। **मरम**—मर्म, रहस्य। **पतियाना**—आश्वस्त होना। **थिर** —स्थिर। **सहज** —स्वाभाविक, एक सा रहने वाला। **सरूप** —स्वरूप। **संभारा** —सम्भालता हूं।

बेगम पुरा सहर को नाउ।

दुखु अंदोहु नहीं तिहि ठाउ।

नां तसवीस खिराजु न मालु।

खउफू न खता न तरसु जवालु॥ 1॥

अब मोहि खूब वतन गह पाई।

ऊहां खैरि सदा मेरे भाई॥ 1॥ रहाउ॥

काइमु दाइमु सदा पातिसाही।

दोम न सेम एक सो आही।

आबादानु सदा मसहूर।

ऊहां गनी बसहि मामूर॥ 2॥

तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै॥

महरम महल न को अटकावै।

कहि रविदास खलास चमारा।

जो हम सहरी सु मीतु हमारा ॥ 3 ॥

बेगमपुरा—वह नगर जहां दुःख-चिन्ता न हो। **नाउ** —नाम। **अंदोहु**— दुःख, रंज। **ठाउ**—स्थान। **तसवीस**—चिन्ता। **खिराजु**—कर, टैक्स। **खउफु** — खौफ, डर। **खता** —दोष, अपराध। **तरसु** —दया। **जवालु** —पतन। **खैरि** — कुशलता। **काइमु दाइमु** —सदा रहने वाली। **दोम** —दूसरा। **सेम** —तीसरा। **मसहूर** —प्रसिद्ध। **गनी**— धनी। **आबादानु** — आबादी। **मामूर**—समृद्ध। **सैल** — सैर। **महरम** —रहस्य को जानने वाला, निकट संबंधी। **खलास** —मुक्त। **अटकावै** —रुके। **हम सहरी** —एक ही साथ नगर में रहने वाला।

मन मेरो सत्त सरूप विचारं।

आदि अंत अनंत परम पद, संसा सकल निवारं ॥ टेक।

जस हरि कहिये तस हरि नाहीं, है अस जस कछु तैसा।

जानत जान जान रह्यो सब, मरम कहो निज कैसा ॥ 1 ॥

करत आन अनुभवत आन, रस मिलै न बेगर होई।

बाहर भीतर प्रगट गुप्त, घट-घट प्रति और न कोई ॥ 2 ॥

आदिहु एक अंत पुनि सोई, मध्य उपाइ जू कैसे।

अहै एक पै भ्रम से दूजो कनक अलंकृत जैसे ॥ 3 ॥

कह रैदास प्रकास परम पद, का जप तप विधि पूजा।

एक अनेक-अनेक एक हरि, कहौं कौन बिधि दूजा ॥ 4 ॥

सत्त सरूप—सत्य का स्वरूप। **संसा** —संशय। **मरम**—मर्म, रहस्य, भेद। **बेगर**—पृथक। **रस मिलै न वेगर होई**—एक बार उस रस का अनुभव हो जाने पर वह फिर छूटता नहीं। **अहै**—है। **पै** —परन्तु। **अलंकृत** —आभूषण।

माधो भरम कैसेहु न बिलाई।

ताते द्वैत दरसै आई ॥ टेक ॥

कनक कुंडत सूत पटा जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा।

जल थरंग पाहन प्रतिमा ज्यों, ब्रह्म जीव द्वति ऐसा ॥ 1 ॥

बिमल एक रस उपजै न बिनसै, उदय अस्त दोउ नाहीं।

बिगता बिगत घटै नहिं कबहूं, बसत बस सब माहीं ॥ 2 ॥

निस्चल निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोविंदा।

अगम अनोचर अच्छर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ॥ 3 ॥

सदा अतीत ज्ञान घन वर्जित, निरबिकार अबिनासी।

कह रैदास सहज सुन्न सत, जिवनमुक्त निधि कासी ॥ 4 ॥

न बिलाई—दूर नहीं होता। **ताते** —इस लिए। **द्वैत**—ब्रह्म और जीवन दोनों के पृथक होने का भाव। **कनक**—सोना। **पट**—वस्त्र। **रजु**—रस्सी। **भुअंग** —सांप। **पाहन** —पत्थर। **प्रतिमा** —मूर्ति। **उपजै** —उत्पन्न होता। **विनसै** —नष्ट होता। **बिगताबिगत** —विगत एवं अविगत। **विगत** —विनाशी। **अविगत** —अविनाशी। **बसत** —वस्तु। **निस्चल** —निश्चल, स्थिर। **अज** —जन्मरहित। **अगम** —अगम्य, पहुंच से बाहर। **अगोचर** —इन्द्रियातीत। **अच्छर** —अक्षर, अविनाशी। **अतरक** —जो तर्क का विषय न हो, अतर्क्य। **ज्ञान धन वर्जित** —जो जाना न जा सके, अज्ञेय। **सुन्न** —शून्य। **जिवनमुक्त निधि** —जीवनमुक्त सिद्ध योगियों के लिए बहुमूल्य धन, ओट एवं आश्रय स्थान।

अविगति नाम निरंजन देवा।

मैं क्या जानूं तुम्हरी सेवा ॥ टेक ॥

बांधू न बंधन छाऊं न छाया।

तुमहीं सेऊं निरंजन राया ॥ 1 ॥

चरन पताल सीस असमाना।

सो ठाकुर कैसे संपुट समाना॥ 2॥

सिव सनकादिक अंत न पाये।

ब्रह्मा खोजत जनम गंवाये॥ 3॥

तोड़ूं न पाती पुजूं न देवा।

सहज समाधि करूं हरि सेवा॥ 4॥

नख प्रसाद जाके सुरसरि धारा।

रोमावली अठारह भारा॥ 5॥

चारों वेद जाके सुमिरत सांसा।

भगति हेत गावै रैदासा॥ 6॥

अविगति—अविनाशी। **निरंजन** —माया से निर्लिप्त। **संपुट**—डिब्बा। **सुरसरि**—गंगा। **नख प्रसाध-धारा**—गंगा की धारा जिसके चरणों का प्रसाद है। **रोमावली अठारह भारा**—अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियां जिन की रोमावली हैं। **चारों वेद सांसा** —चारों वेद जिन (परम तत्व) के श्वास मात्र से निकलते हैं।

तेरा जन काहे को बोलै।

बोलि बोलि अपनी भगति को खोलै॥ टेक।

बोलत बोलत बढ़ै बियाधी बोल अबोलै जाई।

बोलै बोल, अबोल कोप करै, बोल-बोल को खाई॥ 1॥

बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बेद बड़ाई।

उर में धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गंवाई॥ 2॥

बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लगि समझ न भाई।

बोलि बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई॥ 3॥

बोलै गुरु अरु बोलै चेला, बोल बोल की परतिति आई।

कह रैदास मगन भयो जब ही, तबही परम निदि पाई॥ 4॥

तेरा जन—तेरा भक्त। **बोलै** —वर्णन करे, अभिव्यक्त करे, कह। **वियाधि**—व्याधि, व्यथा, रोग। **बोल**—व्यक्त करने वाला, वक्ता। **अबोल**—न कहने वाला, मौन (साधक)। **मान परि बोलै** —गर्व के साथ कहे, अभिमान में कहे। **परतिति** —प्रतीति, विश्वास।

पार गया चाहै सब कोई।

रहि उर वार पार नहिं होई॥ टेक॥

पार कहै उर वार से पारा।

बिन पद परचे भ्रमै गंवारा॥ 1॥

पार परमपद मंझ सुरारी।

तामें आप रमै बनवारी॥ 2॥

पूरन ब्रह्म बसै सब ठाई।

कह रैदास मिले सुख साईं॥ 3॥

पार गया चाहै—मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करे। **रहि उर वार** —इस ओर अर्थात् संसारिक विषय-वासनाओ में आसक्त होकर। **पार नहीं होई**—मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। **पद परचे** —परम तत्व का परिचय।

गोबिंदे तुम्हारे से समाधि लागी।

उर भुअंग भस्म अंग सतत बैरागी॥ टेक॥

जाके तीन नैन अमृत बैन, सीस जटाधारी।

कोटि कलप ध्यान अलप, मद अंतकारी॥ 1॥

जाके लील बरन अकल ब्रह्म गले रुंडमाला।

प्रेम मगन फिरत नगन, संग सखा बाला॥ 2॥

अस महेस बिकट भेस, अजहूं दरस आसा.

कैसे राम मिलौं तोहि, गावै रैदासा॥ 3॥

समाधि—ध्यान। **भुअंग** —सर्प। **सतत**—निरन्तर। **तीन नैन** —दो शारीरिक और एक ज्ञानदेव। **बैन**—वचन। **कोटि कल्प**—करोड़ों युगों तक। **मदन अंतकारी** —काम देव का नाश करने वाले। **लील** —नीला। **बरन** —रंग। **अकल**—अखण्ड। **बिकट**—भयंकर। **तोहि**—तुझे।

जन को तारि तारि बाप रमइआ।

कठिन फंद परयो पंच जमइआ॥ टेक॥

तुम बिन सकल देव मुनि ढूंढूं।

कहूं न पाऊं जमपास छुड़इया॥ 1॥

हम से दीन दयाल न तुमसे।

चरन सरन रैदास चमइया॥ 2॥

रमइया—राम। **जमइया** —यम। **छुड़इया**—छुड़ाने वाला। **चमइया** —चमार।

त्यों तुम कारन केसवे, लालच जिव लागा।
निकट नाथ प्रापत नहीं, मन मोर अभागा॥ टेक॥
सागर सलिल सरोदिका, जल थल अधिकाई।
स्वांति बुंद की आस है पिउ प्यास न जाई॥ 1॥
जौं रे सनेही चाहिए, चित्त बहु दूरी।
पंगुल फल न पहुंच ही, कछु साध न पूरी॥ 2॥
कह रैदास अकथ कथा, उपनिषद सुनीजै।
जस तूं तस तूं तस तुहीं, कस उपमा दीजै॥ 3॥

केसबे—हे परमात्मा। **लालच** —(प्रभु को) प्राप्त करने की उत्कट इच्छा। **जिव**—मन में। **अभागा**—भाग्यहीन। **पंगुल**—पंगु, लंगड़ा। **साध**—इच्छा। **जस** —जैसा। **तस** —तैसा। **कस** —किस से। **उपमा**—तुलना, सादृश्य।

साखी

'रविदास' हमारो राम जी, दसरथ करि सुत नांहि।
राम हमउ मंहि रमि रह्यो, बिसब कुटंबह मांहि॥ 1॥

सब घट मंहि रमि रह्यो 'रविदास' हमारो राम।
सोइ बूझइ राम कूं, जो होइ राम गुलाम॥ 2॥

घट-घट बिआपक राम है, रामहिं बूझै कोय।
'रविदास' बूझै सोइ राम कूं, जउ राम सनेही होय॥ 3॥

मुकुर मांह परछांइ ज्यों, पुहुप मधे ज्यों बास।
तैसउ ही श्री हरि बसै, हिरदै मधे 'रविदास'॥ 4॥

हमउ मंहि—हमारे भीतर। **बिसब कुटंबह** —विश्वरूपी कुटुम्ब। **घट**—शरीर, हृदय। **बुझइ**—जान सकता है, समझ सकता है। **कूं**— को। **मुकुर**—शीशा। **मांह** —में। **पुहुप** —पुष्प। **मधे** —मध्य में।

'रविदास' पीव इक सकल घट, बाहर भीतर सोइ।
सब दिसि देखउं पीव पीव, दूसर नांहि कोई॥ 5॥

एकै ब्रह्म हइ सकल मंहि, अरु सकल ब्रह्मह मांहि।
'रविदास' ब्रह्म सभ भेष मंहि, ब्रह्म बिना कछु नांहि॥ 6॥

'रविदास' जगत मंह राम सम, कोउ नांहि उदार।
गनी गरीब नवाज प्रभ, दीनन के रखवार॥ 7॥

काबे अरु कैलास मंह, जिह कूं, ढूंढण जांह।
'रविदास' पिआरा राम तउ, बइठहिं मन मांह॥ 8॥

पीव—प्रियतम। **भेष** —रूप। **गनी**—धनी। **गरीब नवाज**—गरीबों का पालन करने वाला। **रखवार**—रक्षा करने वाला।

बार खोजत का फिरइ, घट भीतर ही खोज।
'रविदास' उनमानि साधिकर, देखहु पिआ कूं ओज॥ 9॥

बन खोजइ पिअ न मिलहिं, बन मंह प्रीतम नांह।
'रविदास' पिअ है बसि रहयो, मानव प्रेमहिं मांह॥ 10॥

राधो क्रिस्न करीम हरि, राम रहीम खुदाय।
'रविदास' मोरे मन बसहिं, कहुं खोजहूं बन जाय॥ 11॥

ओंकार है सत्त नाम, आदि जुगादि सभ सत।
'रविदास' सत्त कहि सामुंहे, टिकवै नांहि असत्त॥ 12॥

मानव प्रेमहिं मांह—जहा मानव मात्र के लिए प्रेम हो। **राघो** —राघव, राम, परमात्मा का नाम। **करीम**—दयालु, परमात्मा का नाम। **सत्त**—सत्य, परम तत्व। **जुगादि**—सृष्टि के आदि-आरंभ में। **सांमुहे**—सामने। **असत्त**—असत्य।

जिन्ह नर सत्त तिआगिआ, तिन्ह जीवन मिरत समान।
'रविदास' सोई जीवन भला, जहं सभ सत्त परधान॥ 13॥

'रविदास' सत्त मति छांडिए, जौ लौं घट में प्रान।
दूसरो कोउ धरम नांहि, जग मंहि सत्त समान॥ 14॥

जो नर सत्य न भाषहिं, अरु करहिं बिसासघात।
तिन्हहुं सो कबहुं भुलिहिं, 'रविदास' न कीजहि बात॥ 15॥

जउ नाहीं था सरिस्टि मांहि, सोउ होइ हि नांह।
'रविदास' इस्ट सर्वत्त है, सोइ रहइ सरिस्टिहिं मांह॥ 16॥

मिरत समान—मरे हुए के समान। **भाषहिं** —बोलते हैं। **विसातघात**—विश्वासघात। **भुलिहिं**—भूल कर भी। **सरिस्टि**—सृष्टि। **नांह**—नहीं।

अंतर्मुखी भइ जउ करहिं, सत्तनाम करि जाप।
'रविदास' तिन्ह सौं भजहुहिं जगतह तीन्हहु ताप॥ 17॥

इड़ा पिंगला सुसुम्णा, बिध चक्र प्रणयाम।
'रविदास' हौं सबहि छांड़ियों, जबहि पाइहु सत्तनाम॥ 18॥

'रविदास' अराधहु देवकूं, इकमन हुइ धरि ध्यान।
अजपा जाप जपत रहहु, सत्तनाम सत्तनाम॥ 19॥

हरि सा हीरा छांडि कै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जांहिगे, सत्त भाषै 'रविदास' ॥ 20॥

अंतर्मुखी—बाहर के विषयों से हट कर भीतर झांकने वाला। **तिन्ह सौं** —उन से। **भजहुहिं**—दूर भाग जाते हैं। **तीन्हहु ताप**—तीन प्रकार के कष्ट, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक कष्ट। **इड़ा, पिंगला, सुसुम्णा**—ये प्रमुख नाड़ियों के नाम हैं। **प्रणयाम**—प्राणायाम, प्राणसाधना। **विध चक्र**—योग संहिताओं में वर्णित देह के भीतर के मूलाधार आदि छः चक्र। **अजपा जाप**—'सोऽऽम्' (मैं वही हूं) मन्त्र का जाप।

इक बूंद सौं बुझि गई, जनम जनम की प्यास।
जनम मरन बंधन टूटई, भये 'रविदास' खलास॥ 21॥

एकै माटी के सभ भांडे, सभ का एकौ सिरजन हारा।
'रविदास' ब्यापै एकौ घट भीतर, सभकौ एकै घड़ै कुम्हारा॥ 22॥

'रविदास' उपिजइ सभ एक बुंद ते, का ब्राह्मण का सूद।
मूरिख जन न जानइ, सभ मंह राम मजूद॥ 23॥

'रविदास' इकही बूंद सों, सभ ही भयो बित्थार।
मूरिख हैं जो करत हैं, बरन अबरन बिचार॥ 24॥

बूंद—तत्वानुभूति के आनंद रस की एक बूंद। **खलास** —मुक्त। **भांडे**—बर्तन, पात्र। **सिरजन हारा**—रचने वाला। **घड़ै**—बनाता है, रचा है। **कुम्हार**—कुम्भकार। **बुंद** —ब्रह्मरूप बूंद। **सूद**—शूद्र। **बित्थार**—विस्तार, प्रसार। **बरन अबरन**—छोटी बड़ी जाति।

सभ महिं एकुं रामहु जोति, सभनंह एकउ सिरजनहारा
'रविदास' राम रमहिं सभन मंहि बाह्मन हुई क चमारा॥ 25॥

आद अंत जिह कर नहीं, जिह कर नाम अनंत।
सभ करि पालन हार हइ, 'रविदास' अबिगत भगवंत॥ 26॥

'रविदास' इक जगदीस कर, धरै अनंतह नाम।
मोरे मन मंहि बसि रह्यो, अधमन पावन राम। 27॥

'रविदास' हमारो सांइयां, राघव राम रहीम।
सभ ही राम को रूप हैं, केसो क्रिस्न करीम॥ 28॥

रमहिं—रमण करता है, समाया हुआ है। **अविगत** —अविनाशी। **अधमन पावन**—पतितों को पवित्र करने वाला। **सांइयां**—स्वामी।

अलख अलह खालिक खुदा, क्रिस्न-करीम करतार।
रामह नांउ अनेक हैं, कहै 'रविदास' बिचार॥ 29॥

'रविदास' आस इक राम की, अरु न करहु कोउ आस।
राम छांडि अनत रमि हंइ, रहंइ सदा निरास॥ 30॥

माथै तिलक हाथ जप माला, जग ठगने कूं स्वांग बनाया।
मारग छांडि कुमारग डहकै, सांची प्रीत बिनु राम न पाया॥ 31॥

प्रेम पंथ की पालकी, 'रविदास' बैठियो आय।
सांचे सामी मिलन कूं, आनंद कह्यो न जाये॥ 32॥

अलख—अदृश्य, जो देखा न जा सके। **अलह** —अल्लाह। **छांड़ि**—छोड़ कर। **अनत रमिहंइ**—दूसरे की उपासना करते हैं। **डहकै**—भटकता है। **सामी**—स्वामी।

'रविदास' मोरे मन लागियो, राम प्रेम को तीर।
राम रसायन जउ मिलहिं, तउ हरै हमारो पीर॥ 33॥

ओंकार को ध्यान मंहि, जौ लौं सुरति न होय।
तौ लौं सांचे ब्रह्म कूं, 'रविदास' न बूझइ कोय॥ 34॥

'रविदास' सुरत कूं साधि कर, मोहन सों कर पिआर।
भौ-जल कर संकट कटहिं, छुटहिं बिघन बिकार॥ 35॥

'रविदास' जन्मे कउ हरस का, मरने कउ का सोक।
बाजीगर के खेल कूं, समझत नांही लोक॥ 36॥

राम रसायन—राम नाम रूपी अचूक औषधी। **सुरति** —ध्यान। **कुं**—को। **न बूझइ**—नहीं पहिचानते। **सुरत** —सुरति, ध्यान। **मोहन**—सब को मोहित करने वाला, आकर्षक। **भौ-जल**—भवसागर, जन्म-मरण का चक्कर। **कर**—का। **हरस** — हर्ष। **का**—क्या। **सोक**—शोक। **बाजीगर**—खेल करने वाला।

'रविदास' सोई साधु भलो, जउ जग मंहि लिपत न होय।
गोबिंद-सों रांचा रहइ, अरु जानहि नहिं कोय॥ 37॥

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ मन अभिमान न लाय।
औगुन छांडहि गुन गहइ, सिमरइ गोबिंद राय॥ 38॥

'रविदास' सोइ साधु भलो, जउ रहइ सदा निरबैर।
सुखदाई समता गहइ, सभनह मांगहि खैर॥ 39॥

'रविदास' सोइ साधु भलो, जिह मन निर्मल होय।
राम भजहि विषया तजहि, मिथ भाषी न होय॥ 40॥

जउ—जो। **मंहि** —में। **लिपत**—लिप्त। **रांचा रहइ**—मग्न रहता है, लीन रहता है। **गहइ** —ग्रहण करता है। **निरबैर**—निर्बैर, वैर रहित। **समता गहइ**—समभाव को ग्रहण करता है। **खैर**—कल्याण, कुशलता। **मिथ भाषी**—मिथ्या अथवा झूठ बोलने वाला।

'रविदास' सोई साधु भलो, जउ जानहि पर पीर।
पर पीरा कहुं पेखि के, रह्वे सदहि अधीर॥ 41॥

'रविदास' सोइ साधु भलो, जो पर उपकार कमाय।
जाइसोइ कहहि बइसोइ करहि, आपा नांहि जताय॥ 42॥

'रविदास' सोइ साधु भलो, जिह मन नांहि अभिमान।
हरस सोक जानइ नहिं, सुख दुख एक समान॥ 43॥

'रविदास' कहै जाके रिदै, रहै रैन दिन राम।
सो भगता भगवंत सम, क्रोध न व्यापै काम॥ 44॥

पर पीर—दूसरे का दुःख। **पेखि कै** —देख कर। **सदहि**—सदैव। **अधीर**—बेचैन। **उपकार कमाय** —भला करे। **आपा**—अपने आप को। **रिदै**—हृदय में। **रैन**—रात्रि।

जिहवां सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार।
राम मिलहिं घर आई कर, कहि 'रविदास' बिचार॥ 45॥

नेक कमाई जउ करहि, ग्रह तजि बन नंहि जाय।
'रविदास' हमारो राम राय, ग्रह मंहि मिलिंहि आय। 46॥

करम बंधन मंह रमि रह्यो, फल कौ तज्यो न आस।
करम मनुष्य कौ धरम है, सत भाषै 'रविदास'॥ 47॥

सौ बरस लौं जगत मंहि, जीवत रहि करु काम।
'रविदास' करम ही धरम है, करम करहु निहकाम॥ 48॥

हत्थन— हाथों से। **कार** —कर्म। **ग्रह तजि**—घर-बार छोड़ कर। **रमि रह्यो**—रम रहा है, फंसा हुआ है। **मंह** —में। **मंहि**—में। **निहकाम**—निष्काम, फल की इच्छा से रहित हो कर।

परकिरती परभाउ बस, मानुष करता है कार।
मानुष तउ है निमित रूप, कहि 'रविदास' बिचार॥ 49॥

करमन ही परभाउ तजि, निहकरमी होइ कर काम।
'रविदास' निहकरमी करम ही, मेल करायें राम॥ 50॥

सुख दुख हानि लाभ कउ, जउ समझहि इक समान।
'रविदास' तिन्हहिं जानिए, जोगी पुरुष सुजान॥ 51॥

जिह्वा वा भजै हरि नाम नित, हत्थ करहिं नित काम।
'रविदास' भए निहचिंत हम, मम चित करैंगे राम॥ 52॥

परकिरती—प्रकृति। **कार** —कर्म। **परभाउ**—प्रभाव। **निमित**—निमित्त, साधन। **करमन**—कर्मों के। **तजि**—छोड़ कर। **निहकरमी होइ**—निष्काम हो कर, फल की इच्छा त्याग कर। **जोगी**—योगी, कर्मयोगी। **निहचिंत**—निश्चिंत, चिन्ता रहित। **मम**—मेरी। **चित्त**—चिन्ता।

'रविदास' स्त्रम करि खाइहि, जौ लौं पार बसाय।
नेक कमाई जउ करइ, कबहुं न निहफल जाय॥ 53॥

स्त्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन।
'रविदास' तिन्हहि संसार मंह, सदा मिलहि सुख चैन॥ 54॥

प्रभ भगति स्त्रम साधना, जग मंह जिन्हहिं पास।
तिन्हहिं जीवन सफल भयो, सत्त भाषै 'रविदास' ॥ 55॥

धरम करम हुइ एक हैं, समुझि लेहु मन मांहि।
धरम बिना जौ करम है, 'रविदास' न सुख तिस मांहि॥ 56॥

स्त्रम करि—श्रम करके, मेहनत करे। **जौ लौं** —जब तक। **पर बसाय**—बस चले, सामर्थ्य हो। **निहफल**—निष्फल, व्यर्थ। **स्त्रम कउ**—श्रम को, मेहनत को। **ईसर**—ईश्वर, परमात्मा। **जानि कै**—जानकर, समझ कर। **भाषै**—कहता है।

जात-पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग
मानुषता कूं खातहइ, 'रविदास' जात कर रोग॥ 57॥

जन्म जात कूं छांडि करि, करनी जात परधान।
इह्यौ बेद को धरम है, करै 'रविदास' बखान॥ 58॥

नीच नीच कह मारहिं, जानत नांहि नदान।
सभ का सिरजनहार है, 'रविदास' एकै भगवान॥ 59॥

'रविदास' जन्म के कारनै, होत न कोउ नीच।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम कौ कीच॥ 60॥

उरझि रहइ—उलझ रहे हैं, फंसे हुए हैं। **मानुषता** —मनुष्यता, मानवता। **कूं**—को। **खातहइ**—खाये जा रहा है। **जात कर**—जाति-पांति का। **जन्म जात**—जन्म के अनुसार जाति का विचार। **छांडि करि**—छोड़ कर। **करनी जात**—कर्म

के अनुसार जाति का विचार। **परधान**—प्रधान, मुख्य। **इह्यो**—यही। **बेद कौ धरम**—(यही) वेद के अनुसार सत्य है। **बखान**—व्याख्यान, वर्णन। **नदान**—नादान, बेसमझ। **सिरजनहार**—रचना करने वाला। **कूं**—को। **करि डारि है**—कर डालता है। **करम कौ कीच**—कर्म का कीचड़, दुष्कर्मों का बुरा प्रभाव। **ओछे**—नीच।

जात जात में जात है, ज्यों केलन में पात।
'रविदास' न मानुष जुड़ सकैं, जौं लौं जात न जात॥ 61॥

'रविदास' बाह्मन मति पूजिए, जउ होवै गुनहीन।
पूजहिं चरन चंडाल के, जउ होवै गुन परवीन॥ 62॥

दया धर्म जिन्ह में नहिं, हिरदै पाप को कीच।
'रविदास' तिन्हिं जानि हो, महापातकी नीच॥ 63॥

जिन्ह करि हिरदै सत बसई, पंच दोष बसि नांहि।
'रविदास' तौ नर ऊंच भये, समुझि लेहु मन मांहि॥ 64॥

जात जात में जात है—एक एक जाति में अनेक जाति पाई जाती है। **न जुड़ सकैं** —जुड़ नहीं सकते, एक नहीं हो सकते। **जौं लौं..................जात**—जब तक जाति-पाति का भेदभाव दूर नहीं होता। **परवीन**—प्रवीण। **गुन परवीन**—गुणों से सम्पन्न। **कीच**—कीचड़। **महापातकी**—महा पापी। **सत**—सत्य। **बसई**—निवास करता है। **पंच दोष**—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पांच दोष।

ऊंचे कुल के कारणै, ब्राह्मन कोय न होय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, 'रविदास' कहि ब्राह्मन सोय॥ 65॥

काम क्रोध मद लोभ तजि, जउ करइ धरम कर कार।
सोइ ब्राह्मन जानिहि, कहि 'रविदास' बिचार॥ 66॥

दीन दुखी के हेत जउ, बारै अपने प्रान।
'रविदास' उह न सूर कौं, सांचा छत्री जान॥ 67॥

'रविदास' वैस सोइ जानिये, जउ सत्त कार कमाय।
पुंन कमाई सदा लहै, लौरै सर्वत्त सुखाय॥ 68॥

जउ—जो। **जानहि** —जानता है। **ब्रह्म आत्मा**—पर ब्रह्म, परमात्मा। **तजि**—छोड़ कर। **धरम कर**—धर्म का। **कार**—काम। **हेत**—हित में, के लिए। **बारै**—कुर्बान करदे। **उह**—वही। **सूर**—शूरवीर। **छत्री**—क्षत्रिय। **बैस**—वैश्य। **सत्त**—सच्चा, ईमानदारी का। **कार**—काम, व्यापार। **पुंन-कमाई** —नेक कमाई। **लहै**—लेता है, करता है। **लौरै**—चाहता है, कामना करता है। **सर्वत्त**—सब का।

सांची हाटी बैठि कर, सौदा सांचा देइ।
तकड़ी तोलै सांच की, 'रविदास' वैस है सोइ।6॥।

'रविदास' जउ अति पवित्र है, सोई सूदर जान।
जउ कुकरमी असुध जन, तिन्ह ही न सूदर मान॥ 70॥

हरिजनन करि सेवा लागै, मन अहंकार न राखै।
'रविदास' सूद सोइ धंन है, जउ असत्त बचन न भाखै॥ 71॥

'रविदास' हमारो राम जोई, सोई है रहमान।
काबा कासी जानीयहि, दोउ एक समान॥ 72॥

सांची हाटी—सच्ची दुकान। **वैस** —वैश्य। **सूदर**—शूद्र। **कुकरमी**—दुष्कम करने वाला। **असुध**—अशुद्ध, अपवित्र। **करि**—की। **सूद**—शूद्र। **धंन**—धन्य। **असत्त**—असत्य, झूठ। **भाखै**—बोलता है। **जानीयहि**—जानिए।

जब सभ करि दोउ हाथ पग, दोउ नैन दोउ कान।
'रविदास' पृथक कैसे भये, हिन्दू मुसलमान॥ 73॥

'रविदास' कंगन अरु कनक मंहि, जिमि अंतर कछु नांहि॥
तैसउ अंतर नहीं, हिंदुअन तुरकन मांहि॥।74॥

'रविदास' उपजइ सभ इक नूर तें, ब्राह्मन मुल्ला सेख.
सभ को करता एक है, सभ कूं एक ही पेख॥ 75॥

'रविदास' सोइ सूरा भला, जउ लरै धरम के हेत।
अंग अंग कटि भुइं गिरै, तउ न छांड़ै खेत॥ 76॥

करि—की। **पृथक** —अलग। **कंगन**—कड़ा। **कनक**—सोना। **अंतर**—भेद, फर्क। **तेसउ**—वैसे ही। **को**—का। **करता**—कर्त्ता, रचना करने वाला। **कूं**—को। **पेख**—देखो, समझो। **सूरा** —शूरवीर। **लरै** —लड़े। **छांड़ै** —छोड़े। **खेत**—मैदान।

जो बस राखै इंद्रियां, सुख दुख समझि समान।
सोउ अमरित पद पाइगो, कहि 'रविदास' बखान॥ 77॥

बुधि अरु बिबेकहि, जउ राखन चाहौ पास।
इंदरियां संग निरत कौ, तजि देहु 'रविदास'॥ 78॥ 8

कुरमे भांति जउ रहहिं, मन इंदिरिया 'रविदास'।
सांत रहइ नित आत्मा, बढ़हि आतम बिसास॥ 79॥

जो कोउ लोरै परम सुख, तउ राखै मन संतोष।
'रविदास' जहां संतोष है, तहां न लागै दोष॥ 80॥

अमररित पद—अमर पद। **निरत कौ** —नृत्य को। **तजि देहु**—छोड़ दो। **इंदिरिया संग निरत को**—इंद्रियों के वश में होकर इनके अनुसार ही चलते रहने को। **कुरमे भांति**—कछुए की तरह। **लोरै**—चाहे।

'रविदास' जु है बेगमपुरा, उह पूरन सुख धाम।
दुख अंदोह अरु द्वेषभाव, नांहि बसहिं तिहिं ठांम॥ 81॥

'रविदास' मनुष करि बसन कूं, सुख कर हैं दुइ ठांव।
इक सुख है स्वराज मंहि, दूसर मरघट गांव॥ 82॥

धुआं तपन मांहि का धरा, धूम तपन ही त्याग।
'रविदास' मिलि है मोष धाम, सेवा ही तप आग॥ 83॥

'रविदास' जीव कूं मारि कर, कैसो मिलहिं खुदाय।
पीर पैगम्बर औलिया, कोउ न कहइ समुझाय॥ 84॥

बेगम पुरा—शोक रहित नगर। **अंदोह** —शोक। **द्वेषभाव**—वैरभाव द्वेषभाव। **ठांम**—स्थान। **मनुष करि**—मानव के। **बसन कूं**—रहने के लिये। **स्वराज**—स्वराज्य, स्वाधीन व्यवस्था। **मरघट**—श्मशान। **धुआं तपन मंहि**—धूनी रमा कर धुआं तापने में। **का**—क्या। **मोष**—मोक्ष। **सेवा ही तप आग**—यदि तापना ही है तो सेवा रूपी आग ही तापनी चाहिए। **कूं**—को। **औलिया**—सिद्ध पुरुष, संत महात्मा।

'रविदास' जो आपन हेत ही, पर कूं मारन जाई।
मालिक के दर जाइ करि, भोगहि कड़ी सजाई॥ 85॥

दया भाव हिरदै नहीं, भखहिं पराया मास।
ते नर नरक मंहि जाइहि, सत्त भाषै 'रविदास'॥ 86॥

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
'रविदास' दास प्राधीन सों, कौन करे है पीत॥87॥

ऐसा चाहौं राज मैं, जहां मिलै सबन कौ अन्न।
छोट बड़ो सभ सम बसैं, 'रविदास' रहैं प्रसन्न॥ 8॥

आपन हेत—अपने लिए। **कड़ी** —सख्त, घोर। **भखहिं**—खाते हैं। **प्राधीन**—पराधीन। **मीत**—मित्र।

डॉ. सुभाष चन्द्र
एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
मो. : 094164-82156

प्रकाशित पुस्तकें :

● सांझी संस्कृति की विरासत ● सांप्रदायिकता ● दलित आत्मकथाएं : अनुभव से चिंतन ● दलित मुक्ति की विरासत : संत रविदास ● दलित मुक्ति आंदोलन : सीमाएं और संभावनाएं ● अल्ताफ हुसैन हाली : चिंतन और सृजन ● भीष्म साहनी : साहित्य और जीवन-दर्शन ● हरियाणा में उच्च शिक्षा : गहराता संकट

संपादन :

● जाति क्यों नहीं जाती ? ● अंबेडकर से दोस्ती : समता और मुक्ति ● अल्ताफ हुसैन हाली पानीपती : चुनिंदा नज़्में व ग़ज़लें ● मेरी कलम से ● दस्तक ● दस्तक-2 ● कविता समय : शिव रमन गौड़ की कविताओं पर एकाग्र ● हरियाणवी लोकधारा : प्रतिनिधि रागनियां ● उद्भावना पत्रिका का खाप विशेषांक

अनुवाद :

● भारत में सांप्रदायिकता : इतिहास और अनुभव (अंग्रेजी से हिंदी) ● आजाद भारत में सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगे (अंग्रेजी से हिंदी) ● हरियाणा में सत्ता की राजनीति : जाति और धन का खेल (अंग्रेजी से हिंदी) ● छिपने से पहले (पंजाबी से हिंदी) ● रजनीश बेनकाब (पंजाबी से हिंदी)

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक सवालों पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख।